साक्षात्कार

डॉ. विकास दवे
सम्पादक

ISSN : 2456-1924

साक्षात्कार

जुलाई, 2020
अंक : 481

सम्पादकीय एवं ग्राहकीय पत्र-व्यवहार : निदेशक/सम्पादक, साहित्य अकादमी, संस्कृति भवन, बाणगंगा, भोपाल-462003

फ़ोन : 0755 - 2554782 (कार्यालय)

साक्षात्कार की प्रकाशनार्थ रचनाओं के लिए
email - sakshatkarnew@gmail.com पर मेल करें।

वार्षिक सहयोग राशि

व्यक्तिगत ग्राहकों के लिए : ₹ 250

संस्थाओं के लिए : ₹ 300

आजीवन : ₹ 3,000

यह अंक : ₹ 25 (रजिस्टर्ड डाक खर्च अतिरिक्त)

समस्त बैंक ड्रॉफ्ट/मनीआर्डर '**निदेशक, साहित्य अकादमी, भोपाल**' के नाम स्वीकार्य होंगे।

आवरण : अमरजीत कुमार

व्यंग्य चित्र : देवेन्द्र शर्मा, इंदौर

आकल्पन : राकेश सिंह

मुद्रण : मध्यप्रदेश माध्यम, अरेरा हिल्स, भोपाल

'साक्षात्कार' में प्रकाशित रचनाकारों के विचार अपने हैं। सम्पादक या साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन का उनके विचार के प्रति सहमत होना आवश्यक नहीं है।

साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश का मासिक प्रकाशन

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय // 05

बातचीत

वरिष्ठ बाल साहित्यकार डॉ. विमला भंडारी से // 07

आलेख

डॉ. सत्येन्द्र शर्मा कोरोना का भाषागत संक्रमण // 14

डॉ. राजेन्द्र कुमार सिंघवी हिन्दी आलोचना का वर्तमान : भाषा, प्रतिमान एवं विचारधारा // 19

गोवर्धन यादव हिन्दी की विश्वव्यापकता // 24

डॉ. मनमोहन प्रकाश श्रीवास्तव/डॉ. स्नेहलता श्रीवास्तव पंडित दीनदयाल उपाध्याय : नये प्रतिमान गढ़ती वैज्ञानिक अवधारणाएँ // 28

एकता गायकवाड़ 21वीं सदी की बाल कहानियों में पर्वों का महत्त्व // 35

डॉ. रवीन्द्र कुमार उपाध्याय राष्ट्रोत्थान में संघ की भूमिका // 37

डॉ. कृष्णा शर्मा परिवार की सत्ता को स्वीकारती कहानियाँ // 50

कु. प्रीति जायसवाल 21वीं सदी की हिंदी बाल कविता में पेड़ों का महत्व // 55

दुर्गाप्रसाद मालवीय रवीन्द्रनाथ टैगोर के साहित्य में नैतिक व आध्यात्मिक मूल्य // 59

यात्रा वृत्तांत/संस्मरण

क्रांति कनाटे वह एक : अनादि, अनंत, अवध्य... // 62

मनीषा बनर्जी यात्रा : शहर विशाखापट्नम // 73

डॉ. पार्वती व्यास खो गई बचपन की निडरता // 75

व्यंग्य

संदीप सृजन हिंदी साहित्य के इतिहास में तालाबंदी काल // 77

कविताएँ

गोपाल माहेश्वरी आह्वान // 79
श्रीकान्त लोकभाषा // 82
सागर कमल संबंध // 85
शैलेश शुक्ला कोरोना को हराएँ // 87
सुषमा यदुवंशी पाती // 92
रश्मि पंडित मेल होने से तो रहा // 94
वंदना पाण्डेय भीष्म प्रतिज्ञा //97
टीकम चन्दर ढोडरिया दोहे // 101
डॉ. शोभा जैन मकान बिकाऊ है... // 104

कहानी

इंजी. आशा शर्मा बोझ // 106
आचार्य नीरज शास्त्री आत्मनिर्भर // 113

समीक्षा

विनय त्रिपाठी उऋण धन // 117

संपादकीय

आत्मीय पाठक वृंद,
सादर प्रणाम।

विषाणु जनित कोरोना काल में एक लंबा समय 'साक्षात्कार' मासिक का प्रकाशन बाधित हुआ। इस कैलेंडर वर्ष के प्रारंभ अर्थात जनवरी माह से नवंबर माह तक यह क्रम किसी न किसी कारण प्रारंभ नहीं हो पाया। अगस्त में साहित्य अकादमी के निदेशक का नवीन दायित्व स्वीकारते ही सबसे पहले 'साक्षात्कार' को नियमित करना यही सर्वाधिक महत्व का लक्ष्य था। जनवरी से जून तक दो त्रैमासिक विशेषांक पूर्व से ही स्वीकृत थे, जिन्हें शीघ्र ही आप सबके हाथों में सामान्य अंक के रूप में अथवा पुस्तक आकार में सौंपूँगा। माह जुलाई से 'साक्षात्कार' के सामान्य अंकों को पाठकों के हाथ में सौंपने का क्रम प्रारंभ किया जा रहा है।

यह पत्रिका साहित्यकारों और पाठकों के लिए मध्यप्रदेश शासन की, संस्कृति परिषद की अथवा साहित्य अकादमी की केवल एक पत्रिका ही नहीं है बल्कि यह हम सब के मध्य संवाद स्थापित करने का भी एक बड़ा माध्यम है। विशेषकर शासन की नीतियों पर आधारित कला एवं साहित्यिक गतिविधियों के संचालन एवं सूचनाओं का यह एकमात्र माध्यम होने के कारण इसका नियमित पाठकों तक पहुँचना अत्यंत आवश्यक अनुभव होता है। अब तक के प्राप्त अनुभवों के आधार पर साक्षात्कार के लगभग 600 पृष्ठों की सामग्री एक साथ तैयार कर जुलाई से लेकर नवंबर तक के अंक पूरी तरह तैयार कर लिये गये हैं। शीघ्र ही यह अंक क्रमशः आपके हाथों में पहुँचना प्रारंभ हो जाएँगे।

साहित्य अकादमी के निदेशक का दायित्व मेरी ओर आने के पश्चात संपूर्ण मध्यप्रदेश ही नहीं अपितु भारत भर के साहित्य जगत ने जो स्नेह और स्वागत की वर्षा की है उससे उऋण होने की इच्छा भी नहीं और क्षमता भी नहीं। आप सबके इस लाड़ दुलार के लिए हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ। आप सब को यह आश्वस्ती भी देता हूँ कि मैं आप सब का प्रतिनिधि बनकर ही इस दायित्व का निर्वाह करूँगा। क्रमशः संपूर्ण मध्यप्रदेश के साहित्यकारों से प्रत्यक्ष मिलकर अथवा दूरभाष पत्र और ईमेल के माध्यम से उन सब की अपेक्षाओं को प्राप्त कर समझने का प्रयास कर रहा हूँ। इनमें से जो कार्य वैधानिक रूप से आसानी से संपन्न किये जा सकेंगे उन सब को तुरंत मूर्त रूप देने की व्यवस्था भी हाथों हाथ बनाता जा रहा हूँ।

प्रदेश के यशस्वी मुख्यमंत्री श्री शिवराज सिंह जी चौहान और उनकी टोली में संस्कृति मंत्री के रूप में साहित्य और कला क्षेत्र को पोषण देने के लिए अधिकृत संस्कृति मंत्री आदरणीया ऊषा ठाकुर जी का अपेक्षा से अधिक सहयोग प्राप्त हो रहा है। आप सबसे पुनः अनुरोध है की साहित्य

और कला जगत में हम सब मिलकर जो भी नवाचार करना चाहते हैं उसके विषय में मुझे निसंकोच कभी भी सूचित कर सकते हैं। इन सुझावों में 'सर्वजन हिताय' सुझाव हों तो अधिक उत्तम रहेगा। व्यक्तिगत हित के सुझाव देना आसान होता है परंतु सबके लिए हितकर सुझावों की अपेक्षा ही अधिक रहती है। आशा है आप मेरी मंशा को समझ कर इस दिशा में मेरे मार्गदर्शक और सहयोगी बनेंगे।

'साक्षात्कार' पत्रिका को पाठकों के लिए रोचक और समसामयिक बनाने की दृष्टि से कुछ और नवाचार करने का मन बना है जैसे पत्रिका में चित्रांकन को स्थान देना, व्यंग्य चित्र विधा हम सबको चिंतन और आनंद दोनों प्रदान करती है उसे भी समायोजित करना, इसके अतिरिक्त पत्रिका के शीर्षक के अनुरूप भारत भर के वरिष्ठ रचनाकारों से संवाद स्थापित करते हुए साक्षात्कार लेकर उनकी साहित्य यात्रा और रचना कर्म से अन्य रचनाकारों को परिचित करवाना यह भी मुख्य हेतु रहेगा।

यूँ तो 'साक्षात्कार' पत्रिका अपने नाम के अनुरूप इस तरह के साक्षात्कारों का पहले भी प्रकाशन करती रही है किंतु इसमें एक प्रयोग करने का विचार मन में आया है। विगत दिनों भारतीय साहित्यिक पत्रकारिता के संदर्भ में एक पुस्तक पढ़ते हुए श्रद्धेय माखनलाल चतुर्वेदी जी और धर्मवीर भारती जी के संबंध में एक आलेख पढ़ते हुए यह ध्यान में आया था कि कोई भी साहित्यकार पत्रिका का संपादक बनते ही अपने आप को एक अलग पाले में खड़ा कर लेता है और रचनाकारों को दूसरे पाले में खड़ा कर देता है। यदि संपादक और रचनाधर्मियों के बीच सीधा संवाद स्थापित करने की सुचारू व्यवस्था बन जाए तो स्वाभाविक रूप से वह साहित्यिक पत्रिका साहित्यकार पाठकों के लिए भी अत्यंत आत्मीय हो जाती है। बस इसी बात को ध्यान में रखकर यह सोचा है की पत्रिका में संपादकीय का आकार भले थोड़ा छोटा रहे किंतु मैं स्वयं चर्चा करके वरिष्ठ रचनाकारों के साक्षात्कार लूँ और उन्हें आप सबके समक्ष रखूँ। इस बहाने मेरा तो प्रशिक्षण होगा ही आप सब भी इन रचनाकारों के जीवनानुभवों से बहुत कुछ प्राप्त कर सकेंगे।

योजनाएँ बहुत हैं, विचारों का आवागमन भी बहुत तेजी से हो रहा है, इन सभी योजनाओं को मूर्त रूप देने के लिए समय की प्रतीक्षा भी नहीं करनी है। प्रतिदिन आज और अभी क्या-क्या कर सकता हूँ यह विचार करके ही आप सब की मंशा के अनुरूप कार्य करने का प्रयास कर रहा हूँ।

स्नेह आशीष और सहयोग बना रहे...

सदैव सा

डॉ विकास दवे

संपादक

सम्पादक रचनाकार संवाद

वरिष्ठ बाल साहित्यकार डॉ. विमला भंडारी से बातचीत

सम्पादक : लेखन के क्षेत्र में वर्षों से सक्रिय हैं। आपको बच्चों के लिए लिखने की प्रेरणा कैसे प्राप्त हुई?

विमला भण्डारी : अक्सर देखने में आता है हमारी राष्ट्रीय चेतना उस समय बहुत उद्दीप्त होती है जब दूसरे देशों के साथ मैच चल रहा हो। भारत के मैच जीतने से लेकर पदक पा लेने की हमारी शुभेच्छा प्रबल रहती है। राष्ट्रीय पर्व पर भी देश प्रेम के भाव प्रबलता से मन मस्तिष्क में हिलोरे भरता है। हमारा राष्ट्रीय प्रेम व उसके प्रति निष्ठा अटूट व संदिग्ध है। कोई प्रश्न नहीं इस पर परंतु देखना तो यह है कि हम अपने देश के लिए कितने कर्तव्यबद्ध हैं। देश को सुदृढ़ बनाने के लिए नौनिहालों को कितना पुष्ट और तंदुरुस्त करते हैं।

अपनी दिनचर्या में हमारा अधिकांश समय रोजी रोटी के चक्रव्यूह में उलझा रहता है। इसके आगे घर परिवार है। तीज त्यौहार और धार्मिक, सामाजिक अनेक अनुष्ठान है। राष्ट्र को देने के लिए हमारे पास समय ही कहां बचता है और हम उम्मीद रखते हैं अच्छे परिणाम की। देशवासियों के अच्छे आचरण की। क्या हमारा भी कोई योगदान है इसके लिए?

हमें अपने नौनिहालों का पोषण करना होगा। आज के बच्चे देश का भविष्य है। इन्हें समय देंगे, प्रशिक्षण देंगे, मार्गदर्शन देंगे तभी सही राष्ट्र का निर्माण हो पाएगा और बाल साहित्य की इस में महती भूमिका है। यही स्वप्रेरणा मुझे बाल साहित्य की दुनिया में ले आई। स्त्री होने के नाते मां भारती कहीं अपने भीतर रची बसी नजर आती है मुझे।

सम्पादक : साहित्य की किन-किन विधाओं में आपकी सक्रियता है, बाल साहित्य के रचनाकर्म के समक्ष आपको कौन सी चुनौतियाँ दिखाई देती हैं?

विमला भण्डारी : बाल साहित्य, कहानी, कविता, लेख, नाटक, फीचर, शोध पत्र आदि विधाओं में मैं लेखन करती रही हूं पर अब बाल साहित्य में संपादन के कार्य को भी कर रही हूं।

बाल साहित्य लेखन चुनौतीपूर्ण है क्योंकि इसमें बाल मनोविज्ञान की गहरी समझ, भाषा पर पकड़ और लेखन शैली में सरसता, सरलता, प्रभाव और समरसता आदि कौशल की जरूरत होती है। जैसा कि आप जानते हैं कि किसी लेखक के लिए संवेदनशील होना अनिवार्य गुण है। उसके साथ ही विचारों की संप्रेषणयता में पारंगत होना भी जरूरी होता है।

मेरे बाल साहित्य लेखन की जमीन मेरे घर से ही प्रारंभ होती है। मां बनने के बाद बच्चों को पालने के लिए अनगढ़ रचनाएं जन्म लेती हैं। उन्हें संस्कार देने के लिए उनकी छोटी-छोटी समस्याओं के निदान के लिए और उनके मन बहलाने के उपक्रम में बाल साहित्य का रचाव होता है । कभी-कभी ध्यान भटकाने के प्रयास में मनोरंजन के लिए भी छुटपुट रचनाएं स्वत- ही प्रस्फुटित होती रहती हैं। जो कहीं मन के संसार में अवतरित होते हुए पकती रहती हैं।

आप तो जानते हैं स्त्रियों के जीवन में चारों और बालक ही बालक होते हैं। मातृत्व का नैसर्गिक गुण होने के कारण हृदय में वात्सल्य का अपार भाव होता है। सृजन का प्रथम चरण अनायास ही घटित होता रहता है। धीरे-धीरे इस अनायास प्रस्फुटन को जब सहेज और संवार कर कागज पर उकेरा जाता है तो बाल साहित्य का प्रादुर्भाव होता है।

तत्पश्चातचमत्कारी रचनाओं को जन्म देने के लिए तराशने का प्रयास करना पड़ता है। उन्हें परिमार्जित करना पड़ता है। घर परिवार से इत्तर संसार के सभी बालकों के लिए उनके अनुसार रचना का संशोधन और सुधार करना होता है। यह स्व से पर जाने की प्रक्रिया ही बाल साहित्य 'लेखन' की चुनौती भी है।

बाल साहित्य में मेरा रुझान प्रकाशन और उसके बाद मिली अपार सराहना, प्रशंसा के कारण बढ़ता गया। प्रथम पायदान पर ही पुरस्कार प्राप्त करने से मेरा हौसला बढ़ा। यह कई कारणों में से एक प्रमुख कारण भी रहा कि मैं निरंतर बाल साहित्य की ओर केंद्रित होती गई और मैंने उसे आज अपनी प्रमुख विधा बना लिया है।

सम्पादक : वैश्विक बाल साहित्य के समकक्ष भारतीय बाल साहित्य को कहाँ पाती है? क्योंकि गुलिवर्सटेल्स, रॉबिंसनक्रूसो, टॉम आदि बच्चों ने बहुत पसंद किये। क्या इनका कोई भारतीय विकल्प उतना ही स्थापित होता दिखाई देता है?

विमला भण्डारी : यह अंग्रेजी भाषा के लेखक हैं, जिसमें उनकी कल्पना और मनोरंजन है। उनकी अपनी अंग्रेजी भाषा है जिसमें रचा बसा उनकी दुनिया और संसार है। हमारे भारतीय संसार में भी बहुत श्रेष्ठ बाल साहित्य का रचाव हुआ है, परंतु जैसा कि आपका प्रश्न है मैं उसी पर आती हूं।

जीवन की चुनौतियां हैं उसमें। उन से मुकाबला करने का दौर्बल्य और साहस भी प्रकट हुआ है। साधारण बालक के नायक बनाकर उसकी सफलता की अप्रतिम कहानी भी है। कल्पना की ऊंची उड़ान के बावजूद उनमें बाल साहित्य की समझ गहरी और उस पर उनकी पकड़ मजबूत है। यही कारण है कि उनका बाल साहित्य ना केवल बच्चों में बल्कि बड़ों में भी लोकप्रिय हुआ है।

हमारे यहां भी ऐसे कई रचनाकार हैं। इस प्रत्युत्तर में में केवल एक नाम लेना चाहूंगी- सुभद्रा कुमारी चौहान का। उनकी एक कविता बहुत लोकप्रिय हुई है-

मैं तो वही खिलौना लूंगा

मचल गया दीना का लाल

आज बच्चों में कृष्ण, भीम, घटोत्कच, शक्तिमान जैसे भारतीय पात्र भी प्रचलित हुए हैं यह सकारात्मक संकेत है।

सम्पादक : आज बाल साहित्य के समक्ष कई चुनौतियाँ हैं, सबसे महत्वपूर्ण है विचार, मनोविज्ञान और प्रस्तुतिकरण को लेकर, इसका सामना कैसे किया जाय?

विमला भण्डारी : हिंदी बाल साहित्य में स्तरीय लेखन हो रहा है। उसी स्तर पर उसका बढ़िया प्रकाशन भी हो रहा है। आकर्षक रंगीन चित्र में साज सज्जा से उसे सजाया जा रहा है। इसने मुझे कोई चुनौती नजर नहीं आती। जो लोग सतही तौर पर काम कर रहे हैं वही लोग उसे हल्के स्तर स्तर पर ले रहे हैं।

विचार, मनोविज्ञान और प्रस्तुतीकरण को लेकर चुनौती के तौर पर अगर मैं देखती हूं तो बाल साहित्य की समीक्षा और आलोचना का क्षेत्र काफी कमजोर है। अब तक इसमें पर्याप्त कार्य नहीं हुआ है। इसे समांतर साहित्य के साथ बराबर नहीं देखा गया है। इसी कारण कहीं यह कमजोर नजर आता है, परंतु वास्तविकता यह नहीं है।

हिंदी भाषा में प्राचीन काल से ही विपुल बाल साहित्य का सृजन हुआ है। आज भी बाल साहित्य रचना अपने चरम पर है। जरूरत उसकी समीक्षा और आलोचना की है।

सम्पादक : प्राय: बाल साहित्य की अवधारणा में कुत्ते, बिल्ली, चूहे, तोता, मैना या परियों से संबंधित विषय वस्तु होती हैं, क्या आज भी यह विषय सार्थक कहे जाएंगे?

विमला भण्डारी : बच्चों का संसार बहुत छोटा होता है। उन्हें अपने आसपास की छोटी चीजें हमेशा लुभाती हैं। कुत्ते, बिल्ली, चूहे, तोता, परियां, भूत, राजा-रानी, चोर-सिपाही आज भी इस तरह की विषय वस्तु बच्चों को पसंद आती है और यह विषय कभी भी अप्रासंगिक नहीं होंगे। समय बदलने के साथ-साथ उस में कुछ विषय और जुड़ते जाएंगे किंतु प्राकृतिक विषय आधारित रचनाओं का समय कभी नहीं जाएगा क्योंकि यह आज भी बच्चों की पहली पसंद है।

सम्पादक : इन दिनों बच्चों में धैर्य का अभाव देखने में आ रहा है वे जल्द ही अवसाद में डूब जाते हैं कैसा साहित्य रचा जाए जो उन्हें ऊर्जा प्रदान करें?

विमला भण्डारी : सकारात्मक सोच का और आत्मबल बढ़ाने का साहित्य ही बच्चों के लिए अनुकूल होता है, परंतु इसके साथ मनोरंजन बाल साहित्य का आवश्यक तत्व है।

हमारी बात उपदेशात्मक ना होकर बच्चों के बहला कर अपनी बात कह जाए, इस तरह का साहित्य बच्चों को पसंद आता है।

सम्पादक : बाल साहित्य में आज जो भी लिखा जा रहा है उसका समीक्षात्मक पक्ष कमजोर है इसकी क्या वजह है? इसके सुधार हेतु कोई सुझाव आप चाहेंगी?

विमला भण्डारी : बाल साहित्य में आज जो भी लिखा जा रहा है उसका समीक्षात्मक पक्ष कमजोर है, इसकी मुख्य वजह यह है कि साहित्य की समीक्षा कोई दूसरा विद्वान करता है और जब कोई दूसरा काम करता है तो साहित्य का समीक्षात्मक पक्ष कमजोर नहीं होता?

यह हम कह सकते हैं आज जो बाल साहित्य लिखा जा रहा है उसकी समीक्षा अपेक्षित है और इसके लिए विद्वानों को आगे आना चाहिए। उन्हें प्राथमिकता के तौर पर बाल साहित्य की समीक्षाएं लिखनी चाहिए। प्रकाशको को प्रकाशित करने में सम्पादकों को समीक्षा करवाने में बाल साहित्य को

प्राथमिकता देना होगी तभी यह संभव है।

सम्पादक : आज बाल साहित्य में भाषायी परिवेश बदला है, विशेषकर हिंदी की बात करें तो इसमें अन्य भाषाओं का तड़का कुछ ज्यादा लग रहा है, क्या आप इसे हिंदी भाषा पर संकट के रूप में देखती हैं?

विमला भण्डारी : हां बिल्कुल मैं आपकी बात से सहमत हूं की भाषा को लेकर संकट दिखाई दे रहा है, परंतु संप्रेषणियत्ता की दृष्टि से देखें तो अनुचित भी नहीं है। भाषाएं हमेशा बदलती रहती हैं और भाषाएं हमेशा मिलती रहती है। नई भाषाओं का जन्म इसी तरह से हुआ। आज से कुछ साल पहले हिंगलिश को कोई नहीं जानता था।

किन्तु यह मेरा आग्रह भी है और मत भी कि जब साहित्य और भाषा की बात आती है तो कोशिश यही होनी चाहिए कि बच्चों को एक ही भाषा में, सरल शब्दों के साथ, शुद्ध रूप में अपनी बात साहित्य द्वारा संप्रेषित की जाए।

बाल मन एक बार गलती पकड़ लेता है तो उसे फिर सुधार करना मुश्किल हो जाता है अत: शुद्ध रूप ही बालकों के सामने प्रस्तुत होना चाहिए।

सम्पादक : काल्पनिक साहित्य बच्चों को कल्पना लोक का यात्री बना देता है जबकि आज उन्हें अंतरिक्ष पर ले जाने की आवश्यकता है इस सम्बन्ध में आपकी क्या राय है ?

विमला भण्डारी : यथार्थ के नाम पर बच्चों से कल्पना लोक छीन कर हम उनका बचपन छीन रहे, यह सामाजिक अपराध है। यह वह समय होता है जब बाल मन विकसित हो रहा होता है। उसकी जिज्ञासाएं अनंत होती हैं और जैसा वह देखता है, समझता है, उसी अनुसार उसकी कल्पनाएं भी कुलांचे भरती रहती हैं। यह एक नैसर्गिक प्रक्रिया है। यथार्थ के नाम पर कल्पना के आनंद से वंचित करना बचपन को लंगड़ा करने के समान है।

सम्पादक : यथार्थ की बात यदि करें तो यथार्थ का धरातल बहुत खुरदुरा और रूखा है, इससे बच्चों में जीवन के प्रति हताशा भी उपज सकती है , ऐसे में क्या सुझाव देंगी ?

विमला भण्डारी : मैं 100 प्रतिशत कल्पना लोक की पक्षधर भी नहीं हूं। बच्चों को यथार्थ का ज्ञान भी जरूरी है। यानी कल्पना और यथार्थ का सम्मिश्रण इस तरह से हो कि बच्चों में धीरे-धीरे विवेक का विकास हो। इसके साथ अच्छे-बुरे की समझ बनती रहे और परिपक्वता धीमी गति से छाया की तरह आगे बढ़ती रहे।

सम्पादक : बाल नाटकों की बच्चों के विकास में क्या भूमिका देखती हैं?

विमला भण्डारी : बाल नाटकों में आज भी बालकों की रूचि है। बाल नाटक पढ़ना, प्रस्तुत करना, देखना बच्चों को आज भी अच्छा लगता है क्योंकि बाल नाटक में बालक की अपनी सक्रिय भागीदारी होती है। जैसे पात्र के अनुरूप वस्त्रों का धारण करना, अभिनय करना और काल्पनिक पात्रों को जीवंत रूप में देखना। यह सब बच्चे बहुत दिलचस्पी से देखते, पढ़ते और प्रस्तुत करते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि बच्चे सीधे-सीधे विषय वस्तु से जुड़ जाते हैं तो नि:संदेह परिणाम अनुकूल ही मिलेगा। नाटक के माध्यम से हम बच्चों तक अपनी बात बहुत सरलता से पहुंचा सकते हैं। नाटक बच्चों को

प्रभावित करते हैं। इस तरह से वह उनके विकास में सहायक होते हैं।

सम्पादक : देश के शीर्षस्थ साहित्यकार जिनकी कलम में शक्ति है वे बाल साहित्य के प्रति उदासीन हैं क्या कारण है? यह तो नहीं कि बाल साहित्य उन्हें उतनी प्रसिद्धि नहीं देता जितनी प्रोढ़ साहित्य देता है?

विमला भण्डारी : देश की आजादी के बाद हिंदी भाषा को मातृ भाषा का दर्जा दिया गया इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि देशज भाषा और बोलियों को गंवारू मान लिया गया। उसका परिणाम यह हुआ कि देशज भाषा में जो साहित्य था वह धीरे-धीरे विलुप्त होने लगा। इसी तरह से आजादी के बाद पैदा हुई नव पीढ़ी के रचनाकारों में शीर्षस्थ रचनाकारों ने प्रौढ़ साहित्य तो पर्याप्त लिखा पर बाल साहित्य में इतनी रुचि नहीं दिखाई। प्रक्रिया ठीक उसी तरह से हुई की बालकों में ही जब साहित्य के संस्कार नहीं दिए जाएंगे तो वह बड़े होकर पाठक कैसे बनेंगे? साहित्य के संस्कार बचपन से ही दिए जाते हैं। बच्चा पाठक होगा तो आगे जाकर प्रौढ़ भी पाठक होगा। यही कारण है कि आज का हिंदी साहित्य धीरे धीरेहाशिये की ओर बढ़ रहा है। हमें इसके लिए चेतना होगा। बच्चों में साहित्य पढ़ने की ललक बालपन से ही पैदा करनी होगी।

सम्पादक : बाल साहित्य में आधुनिकता, संस्कृति और परंपरा का परस्पर कितना समन्वय हो?

विमला भण्डारी : इन तीनों का समन्वय तो विषय वस्तु और लेखक के विचार पर निर्भर करता है। हां, परंतु अंधविश्वास से दूर रख कर स्वस्थ विचार का पोषण होना चाहिए।

सम्पादक : इलेक्ट्रॉनिक मीडिया नई पीढ़ी के मस्तिष्क पर हावी है, इंटरनेट, टेलीविजन, कंप्यूटर के समय में बाल साहित्य का क्या भविष्य देखते हैं? क्या कोई नकारात्मक प्रभाव भी दिखाई दे रहा?

विमला भण्डारी : इलेक्ट्रॉनिक मीडिया केवल बालकों के ही नहीं बड़ों के मन मस्तिष्क पर भी हावी है। छोटे-बड़े सभी पूरे समय इंटरनेट, टेलीविजन, कंप्यूटर, मोबाइल आदि में डूबे रहते हैं तो स्वाभाविक तौर पर बालक भी बच्चों का अनुसरण करते हैं। जैसा वह परिवेश में देखते हैं वैसा ही उनके स्वभाव में ढलता जाता है।

इस तरह वे आभासी दुनिया में रहने लगे हैं तथा धीरे-धीरे उनकी संवेदनाएं लुप्त होने लगी हैं। इस तरह वे एक मशीनी मानव बनने की ओर बढ़ रहे हैं। वर्तमान यह संकेत दे रहा है कि भविष्य खतरे में है और हमें मुश्किलों में डालने वाला है इसलिए हम पहले से ही सतर्क हो जाएं।

सम्पादक : आज बाल साहित्य की पत्र-पत्रिकाएं तो बड़ी मात्रा में निकल रही हैं, क्या आप समझती हैं कि वो बाल साहित्य को सही दिशा प्रदान कर रही हैं ?

विमला भण्डारी : जी हां, बाल पत्रिकाएं बाल साहित्य को सही दिशा प्रदान कर रही हैं। बाल पत्रिकाएं बाल साहित्य संवर्धन और संप्रेषण में बड़ा योगदान देती है। बाल साहित्य का अच्छा स्त्रोत साबित हो रही हैं। यह सच है कि नंदन, पराग, नन्हे सम्राट बन्द हुई हैं परन्तु देवपुत्र, बच्चों का देश, बाल वाणी, बाल वाटिका जैसी पत्रिकाएं आज भी पाठक जुटा रही हैं।

सम्पादक : बच्चों की पढ़ने के प्रति अरुचि है या फिर उन तक वह साहित्य नहीं पहुँच रहा जो उन्हें बांधे रख सकें? बाल साहित्य के प्रकाशक भी उदासीन पुस्तक नहीं बिकने के कारण, आपका क्या

मत है इस सम्बन्ध में?

विमला भण्डारी : मुझे तो ऐसा प्रतीत नहीं होता है। बच्चों की पढ़ने में रुचि है यदि उन्हें सुंदर रंगीन बाल साहित्य पढ़ने को मिले तो वह उसे पढ़ते हैं।

बाल साहित्य के प्रति प्रकाशक उदासीन नहीं है क्योंकि आज बाल साहित्य ही सबसे अधिक बिक रहा है। स्कूलों के पाठ्यक्रम में, स्कूल के पुस्तकालयों में, थोक खरीदी के दौरान भी बाल साहित्य का अच्छा आदान-प्रदान होता है। कारण बाल साहित्य छापने में प्रकाशक रुचि रख रहे हैं। हां, रंगीन चित्र वाले बाल साहित्य की छपाई महंगी अवश्य होती है।

सम्पादक : बाल साहित्य वंचित समाज के हर बच्चे तक पहुंचे इसके लिए क्या सुझाव देंगी ?

विमला भण्डारी : बच्चों के लिए पुस्तकालय अच्छी जगह है। चल पुस्तकालय भी चल रहे हैं। इसके अतिरिक्त उपहार में बच्चों को बाल साहित्य की पुस्तकें पढ़ने में दी जाए।

हमारे यहां जो पुरानी हो चुकी पत्रिकाएं हैं वह उन बच्चों तक भी पहुंचाई जाए तो बच्चों को अच्छी सामग्री पढ़ने को मिल सकती हैं। समाज का सम्पन्न वर्ग कुछ धन ऐसे कार्यों के लिए भी व्यय करें। यह हम सबका सामाजिक दायित्व भी है।

सम्पादक : बाल साहित्य की किन विधाओं पर अभी और काम करने की आवश्यकता है?

विमला भण्डारी : बाल साहित्य में उपन्यास, कहानी, कविता और नाटक विधा पर तो बहुत काम हुआ परंतु अभी कुछ विधाएं अछूती ही हैं। जैसे यात्रा वृत्त संस्मरण, पत्र लेखन, रेखाचित्र, रिपोर्ताज, फीचर, पहेली, आत्मकथा, जीवनी जैसी विधाओं पर अभी बहुत कुछ काम करना बाकी है। इसके अतिरिक्त समीक्षा और आलोचना के क्षेत्र में भी बहुत काम की आवश्यकता है।

सम्पादक : अंग्रेजी बाल साहित्य की बात करें तो अपेक्षाकृत क्या स्थिति हैं ?

विमला भण्डारी : अंग्रेजी का बाल साहित्य बहुत सुदृढ़ स्थिति में है।

उसका एक बहुत बड़ा बाजार है और बहुत अधिक पाठक भी है। पुस्तकों के कई संस्करण आते हैं और प्रति संस्करण में हजारों की संख्या में पुस्तकें छपती हैं। जिसमें ना केवल बच्चे बल्कि जवान और प्रौढ़ भी बाल साहित्य के पाठक हैं।

सम्पादक : वर्तमान हिन्दी बाल साहित्य से आप कहां तक संतुष्ट हैं? नवीन परिवेश को देखते हुए क्या उपेक्षित हो रही विधाओं की रचना की जानी चाहिए?

विमला भण्डारी : वर्तमान बाल साहित्य मैं कई विधाओं में कार्य अब शुरू हुआ है और एक आंदोलन सा चल रहा है। धीरे-धीरे यह भी अपनी जड़े जमाना शुरू करेगा। बाल साहित्य लेखन में नए लेखक आ रहे हैं और रुचि ले रहे हैं । कई सम्मेलन बाल साहित्य के विमर्श के हो रहे हैं। पत्र वाचन की संख्याएं भी बढ़ी है ।

इसी तरह बालकों के कार्यशाला ओं की संख्या भी बढ़ी है। कुल मिलाकर मुझे तो काफी संतुष्टि है कि वर्तमान में अच्छा कार्य हो रहा है।

सम्पादक : अपने साहित्यिक रचना कर्म के बारे में बताइए?

विमला भण्डारी : स्वाध्याय हमेशा हमें वर्तमान में रखता है और खुद के मूल्यांकन का अवसर

भी देता है। समय के साथ पीढ़ी बदलती है तो समाज बदलता है। समाज की सोच, जीवनशैली, भाषा बहुत कुछ बदलता रहता है निरंतर। इस पदाचाप पर नजर रखकर हम अपने साहित्य सृजन के प्रयोग करते रहे तो पिछड़ेगें नहीं। हमारा कार्य चिन्हित होने लगेगा। पहचान बनती चली जाती है। धारा में प्रवाह मान रहते हुए कभी प्रथम पुरस्कार के हकदार भी बन जाते हैं। तुलना, विवेचना और विमर्श हमें निरंतर करते रहना चाहिए। यायावरी भी करनी चाहिए। जितना देखने को मिलता है उतना समझने को मिलता है। लेखन बशर्ते ड्राइंग रूम में बैठकर करें परन्तु हमारे पांव हमेशा उस वर्ग में गड़े रहने चाहिए जिस कार्य क्षेत्र को हमने लेखन हेतु चुना है। जैसे मेरे संपर्क में महिलाएं व बच्चे हैं विभिन्न वर्गों के और वे ही मेरे उद्गार में भी बने रहते हैं।

सम्पादक : बाल साहित्यकारों से आपकी क्या अपेक्षाएं हैं ?

विमला भण्डारी : बाल साहित्यकार बाल मनोविज्ञान को आधार बनाकर अपनी रचनाएं लेखन करें। उस में रोचकता, सहजता, सरलता और मनोरंजकता के तत्वों का आवश्यक समावेश करें ताकि बाल साहित्य उबाऊ और नीरस नहीं बने।

कल्पना का इतना ही प्रयोग करें कि बच्चा अंधविश्वासी या अति विश्वासी नहीं बने और ना ही लिंग भेद जैसी बातें बाल साहित्य में समावेश की जाए जिन से बच्चों के मन में कुंठा पैदा हो।

उनका मनोबल बढ़े, और हिम्मत की ओर अग्रसर हो ऐसा साहित्य चाहिए। अपनी भाषा, अपना देश, अपनी संस्कृति के प्रति उनमें रागात्मक लगाव पैदा हो। वे एक संवेदनशील मानव बने तभी हमारी लेखन की सार्थकता होगी तब ही हम एक बालक को अच्छे संस्कार साहित्य के द्वारा दे पाएंगे।

सम्पादक : आपका आगामी संकल्प क्या है?

विमला भण्डारी : बाल साहित्य का राष्ट्रीय स्तर पर संरक्षण, संवर्धन और उन्नयन। बालकों में साहित्य संवेदना जागृत करना। बालकों में पठनीय अभिरुचि जागृत करना। उन्हें देश का जिम्मेदार नागरिक बनाना। मानवीकरण बनाए रखते हुए उनके दिल में राष्ट्रप्रेम की भावना का प्रादुर्भाव करना। हिन्दी की सार्वभौमिकता स्थापित करना। बाल साहित्यकारों को एक धरातल प्रदान कर पहचान सम्मान दिलाकर स्थापित करना। ठीक उसी तरह जैसे फिल्म, टीवी के कलाकारों और खेल के खिलाड़ियों के प्रति जो रुझान जन-जन में दिखाई देता है उसी तरह का रुझान बाल साहित्यकारों के प्रति पैदा करना। क्या देश में वह दिन भी आएगा जब किसी बाल साहित्यकार से मिलने के लिए लोगों की भीड़ उमड़ जाएगी और उसे नियंत्रण करने के लिए पुलिस को लगाना पड़ेगा? अमेरिका में मैंने बाल साहित्य के प्रति ललक देखी है। बच्चे क्या, बड़े क्या, पात्रों के दीवाने हैं। बाल पात्रों को जीवंत करते हुए बड़े-बड़े स्टूडियो हैं। जिन में प्रवेश का टिकट लगता है। लोग वहां देखने जाते हैं और आनंद मनाते हैं। देखा जाए तो यहां बाल साहित्य में की गई कल्पना का पूरा एक बाजार खड़ा हुआ है। साहित्यकार की कल्पना को मूर्त रूप देता हुआ। जहां किरदारों और कहानी के प्रति इतनी दीवानगी है तो वहां उनके लेखकों को सम्मान मिलना कोई आश्चर्य की बात नहीं। हिंदी बाल साहित्य के लेखकों के लिए तो यह मात्र एक सपना ही है अभी बहुत दूर चलना है पर सफलता सामने है।

सम्पर्क : *सलूम्बर (राजस्थान)*
मो. 9414759359

डॉ. सत्येन्द्र शर्मा

कोरोना का भाषागत संक्रमण

समाज की किसी भी हलचल, गतिविधि या घटना का सबसे तीव्रगामी सीधा व प्रत्यक्ष प्रभाव जिस स्थाई घटक में दिखाई देता है, वह भाषा है। इसीलिए यह अकारण नहीं कहा जाता है कि समाज ही भाषा की प्रयोगशाला और उसका कार्यस्थल है। वह समाज में जन्मती है, प्रचलन और प्रयोग में आती है और समाज के सबसे स्थाई व प्रभावी कला माध्यम साहित्य में प्रवेश कर जाती है। यही साहित्य अपने युग और कालावधि का साक्ष्य बनता है; इसीलिए साहित्य को तत्कालीन समय की अन्तरंग प्रकृति, संस्कृति और इतिहास को समझने का बड़ा उपयुक्त साधन माना जाता है। वैश्वीकरण के हाहाकारी प्रभाव में संसार की अनेक बोलियों और उपभाषाओं का विलीन होते जाना सिर्फ भाषा या बोली का नष्ट होते जाना नहीं है बल्कि प्रकारान्तर से तत्कालीन समाज के अन्तरंग स्वरूप से अपरिचित होते जाने का खतरा भी है; जो दिखाई पड़ने लगा है। अस्तु;

अनेक अच्छे-बुरे विदेशी प्रभाव हम पर पड़ते रहे हैं, खान-पान, रहन-सहन, बात-व्यवहार यानी समेकित जीवन शैली में। किन्तु ये प्रभाव स्वेच्छिक थे। कोरोना भी विदेश से जाने-अनजाने, किन्तु अनचाहे मिला एक ऐसा अभिशाप है, जिसे स्वीकार करना या न करना हमारे वश में न था। यह महामारी अपने साथ जीवन जीने के बदलाव के जो दृश्य लेकर उपस्थित हुई है, उसके घाव और उसकी दु:ख भरी स्मृतियाँ जहाँ लम्बे काल तक मानव मस्तिष्क में ज़िन्दा रहेंगी, वहीं भाषा के स्तर पर भी यह महामारी स्थायी रूप से अपना प्रभाव दर्ज़ करा रही है। इस महामारी ने भाषा की इकाई, जिन शब्दों को एकाएक जन सामान्य की जुबान में व्यवहृत होने के लिए बाध्य कर दिया है, वे शब्द देश के अधिकांश ग्रामीण, अशिक्षित, अल्पशिक्षित लोगों के जीवन में शायद ही कभी अपना इस तरह अधिकार जमा पाते जैसा उन्होंने जमा लिया है। किसे कल्पना थी कि अंग्रेजी की सामान्य शब्दावली से अपरिचित, अशिक्षित ग्रामीण हो या शहरी 'क्वॉरन्टीन', 'आइसोलेट्', 'कन्टामिनेट एरिया', और 'सोशल डिस्टेंसिंग' आदि शब्दों का इस तरह प्रयोग करेगा, जैसे वह इनकी अर्थात्मा को वर्षों से जानता-पहचानता रहा हो।

कोरोना भारतीय समाज में जिस अंग्रेजी शब्द-समूह को लेकर एक साथ धँस गया, उतने शब्द एक साथ किसी एक घटना के साथ इसके पूर्व शायद ही आए हों। गौर करने की बात यह भी है कि ऐसी राजनीतिक, सामाजिक, शैक्षणिक या वैचारिक जगत की किसी हलचल को लेकर विदेशी भाषा से आए ऐसे शब्द किसी खास या पढ़े-लिखे वर्ग तक ही प्रचलन में रह गए हैं, किन्तु कोरोना के साथ आई शब्दावली ने

क्या आम और क्या खास समाजवादी दृष्टिकोण से सबमें बराबर अपनी पैठ बनाई है। स्वराज्य का लाभ अन्तिम छोर के अन्तिम व्यक्ति तक पहुँचाने की गाँधी जी की कामना चाहे आज भी आकाश-कुसुम ही क्यों न हो किन्तु कोरोना के साथ आए सामान्यतया कठिनाई से उच्चरित होने वाले क्वॉरन्टीन, कन्टामिनेट एरिया, आइसोलेट्, लॉक डाउन और सोशल डिस्टेंसिंग जैसे शब्द भी ठेठ गँवई-गाँव के रहवासियों तक पहुँच गए। शब्दों की रचना-प्रकृति और उसकी अर्थचेतना से अनभिज्ञ लोग शब्द का भाव समझकर उससे परिचित होने लगे, बगैर यह सोचे-विचारे कि जिस आशय को व्यक्त करने के लिए जिस विदेशी शब्द का प्रयोग किया जा रहा है, उसकी अर्थात्मा को सटीक और सुसंगत ढंग से व्यक्त करने के लिए निज भाषा में ज्यादा वस्तुबोधक शब्द विद्यमान हैं।

'**क्वॉरन्टीन**'(Quarantine) जैसा ध्वन्यात्मक शब्द आया तो कोरोना के साथ ही है किन्तु इस बीमारी के चंगुल में आए लोगों को अलग रहने की हिदायत देते हुए। कोरोना मुक्त करने के लिए यह अवधि चौदह दिन नियत की गई है। जिज्ञासा यह उभरती है कि यदि इस भारी भरकम शब्द की जगह हमने '**एकान्त वास**' शब्द का प्रयोग किया होता तो आम से आम आदमी स्वत: ही समझ लेता कि चूँकि ये बीमारी छूने या पास आने पर लग जाती है इसलिए रोगी को एकान्त वास करने का प्रावधान किया गया है। सामान्य लोगों को भी यह शब्द जाना-पहचाना सा लगता और इसकी भारी भरकम ध्वन्यात्मकता से यह भ्रम भी न होता कि 'क्वॉरन्टीन' का अर्थ 'यंत्रणा' या 'प्रताड़ना' नहीं है।

अर्थ या भाव के स्तर पर '**आइसोलेट्**'(Isolate) 'क्वॉरन्टीन' का सहोदर लगता है। इसमें स्वत: को दूसरों से अलग कर लेने, पृथक कर लेने की बात है। एकान्त या अकेलेपन का भाव दोनों में है, बहुत हुआ तो 'क्वॉरन्टीन' में एकान्त वास किए जाने की बाध्यता या विवशता है और 'आइसोलेट्' स्वेच्छा से अलग कर लेने का भाव। बारीकी से देखा जाये तो इसमें आत्मानुशासन या आत्मप्रेरणा की ध्वनि निहित है किन्तु जहाँ तक इस रोग के सन्दर्भ में इनका प्रयोग है, इन दोनों में स्वत: को अलग करना स्वेच्छिक नहीं वरन् चिकित्सा प्रक्रिया की बाध्यता है। हाँ, 'आइसोलेट्' के लिए निर्धारित अवधि के लिए 'अलग रहना' या 'अलगाव' जैसा प्रचलित पद पहले से विद्यमान है, जिसका प्रयोग किया जाना चाहिए था। ऐसा करने से यह प्रक्रिया मानसिक स्तर पर सम्बन्धित रोगी और उसके परिजनों को तब उतनी भयावह न लगती।

कोरोना वृत्त के लिए प्रचलन में आए कुछ पद बन्धों का प्रयोग भी अंग्रेजी भाषा की दृष्टि से असंगत जान पड़ता है। 'इम्यूनिटी पावर' एक ऐसा ही पद बन्ध है। '**इम्यूनिटी**' (Immunity) शब्द का कोशगत अर्थ 'रोग से प्रतिरक्षा' (संज्ञा) है, और क्रिया में रूपान्तरित होकर यह 'इम्यूनाइज' अर्थात् प्रतिरक्षित हो जाता है। यह शब्द संज्ञा और क्रिया के रूप में परिपूर्ण है, और इसके साथ '**पावर**' (Power) की आवश्यकता नहीं है। यदि प्रयोग करने वालों का आशय प्रतिरोधी क्षमता से है तो इसके लिए 'रिज़िस्ट्रेन्स' (Resistance) (अर्थात् प्रतिरोधी क्षमता, या प्रतिरोधक शक्ति) का ही प्रयोग किया जाना चाहिए। पाउअर् (Power) (प्रचलन में पावर) शब्द की आवश्यकता इसके साथ भी नहीं है। चूँकि मामला रोग से प्रतिरक्षा का है इसलिए 'इम्यूनिटी' शब्द ही सार्थक और संगत है किन्तु मुझे लगता है जिस भाव को व्यक्त करने के लिए इम्यूनिटी शब्द का व्यवहार चल पड़ा उसकी जगह '**प्रतिरोधक**

क्षमता' या '**प्रतिरोधक शक्ति'** बढ़ाए या बनाए रखने की सलाह ज्यादा संप्रेषित और सहज ग्राह्य होती।

'कन्टामिनेट एरिया'(Contaminate area) दूसरा ऐसा पद बन्ध है, जो अपने आशय में स्पष्ट है। किन्तु जो लोग अंग्रेजी नहीं जानते उनके लिए यह क्षेत्र बेहद खतरनाक और डरावना है और जो अंग्रेजी दॉ हैं, वे जानते हैं कि इसका अर्थ 'गंदा', 'अपवित्र', 'रोगयुक्त', और 'दूषित' है। निज भाषा में काने को भी सूरदास कहकर सम्मानपूर्वक यथार्थ बोध कराए जाने की विरासत और शिक्षा हमें मिली है, इसलिए हम उपर्युक्त दोनों अतिभाव-अप्रिय और भयावह लगना - से बचाव चाहते तो इस रोग से चिह्नित रहवासियों के स्थान को - **विशेष संसूचित,** सुरक्षित या **प्रदूषित क्षेत्र** कहकर इंगित कर सकते थे।

दरअसल, हमारे यहाँ विश्व की किसी घटना, विचार, पहनावा, खान-पान, जीवन शैली की जस की तस नकल करने की गहरी रूढ़ि है। हम अपनी धरती, उसकी मिट्टी, उसकी प्रकृति और परिवेश तथा इतिहास बोध के बगैर अनुकृति के अभ्यस्त हो गए हैं। यदि आयातित चीजें बाध्यकारी भी हैं तो हम उन्हें अपने परिवेश के अनुकूल ढालने या परीक्षण करने का विचार भी नहीं करते, फिर भाषागत पहलू तो सर्वथा गौण मुद्दा है-घर की मुर्गी दाल बराबर-जैसा। महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने अपने चर्चित निबन्ध 'दिमागी गुलामी' में इस प्रवृत्ति को भलीभाँति उजागर किया है। मुझे यह टिप्पणी कोरोना काल में प्रचलित 'सोशल डिस्टेंसिंग' शब्द के अनर्थवाचक रूप को स्मरण करते हुए लिखना पड़ रही है।

'सोशल डिस्टेंसिंग' (Social Distansing) का सीधा अभिप्राय सामाजिक दूरी है। सामाजिक दूरी अर्थात् समाज से दूरी (तो इसे बगीचे, सिवान या जंगल में रहने का संकेत माना जाए) या फिर समाजों, पंथों या सम्प्रदायों या वर्गों की आपसी दूरी माना जाए। जबकि इसका ऐसा अर्थ सोचना भी अज्ञानता है। इस पद बन्ध की ध्वनि हो या लक्षणा, व्यंजना किसी भी रूप में यह व्यक्ति की आपसी दूरी का अर्थ नहीं देता जबकि कोरोना की संक्रामकता के विशेष लक्षण के कारण इसका मूल अभिप्राय यही था। हिन्दी में इसे '**परस्पर दूरी'** या '**आपसी दूरी'** कहकर सन्देश के वास्तविक या मूल स्वर को व्यक्त किया जा सकता था। आम लोगों के लिए 'सोशल डिस्टेंसिंग' का आशय या तो अमूर्त, अबूझ या फिर मज़ाक का उपादान बन कर रह गया है।

हमारे राष्ट्रीय जीवन में अनेक तरह के **'वायरस'** (Virus) विचर रहे हैं और वे लगातार सार्वजनिक जीवन के अनेक क्षेत्रों को विषैला बना रहे हैं इसलिए 'वायरस' शब्द से हमारे यहाँ के लोग कमोवेश परिचित हैं; और कोरोना एक 'वायरस' है यह समझने के लिए लोगों को कोई दिक्कत नहीं हुई होगी किन्तु यदि हमने इसे '**विषाणु'** के रूप में समझा और समझाया होता तो इस शब्द की भाषिक ध्वनि में ही इसका **'विष से युक्त होना'** व्यक्त होता जो लोगों के दिलो-दिमाग पर ज्यादा असर डालता। उच्चारण और ध्वनि की दृष्टि से **'वॉरियर'** (Warrior) 'वायरस' के निकटवर्ती होते हुए भी अपनी चेतना में उसका धुर विरोधी है। 'वायरस' जहर घोलने की दुष्ट प्रतिज्ञा लिए हुए है वहीं 'वॉरियर' इस जहर को समाप्त करने के लिए कर्म, मन और वचन से सन्नद्ध है। डॉक्टर, नर्स, सिपाही, प्रहरी, सफाईकर्मी और अन्य किसी भी रूप में इस महामारी से लड़ने के लिए अपने प्राणों को संकट में डालकर भी कार्यरत हैं। वे सच्चे अर्थों में सैनिक हैं, योद्धा हैं। किन्तु यदि उन्हें 'वॉरियर' न कहकर

कोरोना योद्धा या **कोरोना सैनिक** ही कहा जाता तो भावकों में अर्थ और भाव प्रतीति ज्यादा होती।

अंग्रेजी शब्द '**पॉज़िटिव**' (Positive) अपनी 'रचनात्मकता' (गुण, दृष्टि या विकास आदि के लिए) ज्यादा माना जाता है। इसके 'निश्चय' या 'संदिग्ध' अर्थ भी गुणात्मकता लिए हुए हैं। ध्वनि सामीप्य वाला '**निगेटिव**' (Negative) नकारात्मकता से भरा इसका विपरीतार्थी है। कोरोना की मार और उसकी भयावहता इस कदर हावी हुई कि चिकित्सकीय परीक्षण में 'पॉज़िटिव' पाया जाना यानी प्राणों पर बन आना जैसा हो गया और 'नकारात्मक' ध्वनि वाला 'निगेटिव' सबकी आँखों का चहेता हो गया। दरअसल, अंग्रेजी से कम परिचय रखने वाले हम अधिकांश हिन्दी भाषी 'पॉजिटिव' के इस एक खास अर्थ से प्राय: अपरिचित हैं कि चिकित्सकीय परीक्षण में किसी अणु की मौजूदगी दिखाने के लिए भी इस शब्द का प्रयोग किया जाता है। और यह स्थिति सिर्फ कोरोना परीक्षण के लिए नहीं है, बल्कि किसी भी बीमारी के लिए है। यह अंग्रेजी मनोवृत्ति के सिर चढ़कर बोलने का ही परिणाम है कि अखबार हों और चाहे दृश्य माध्यम सभी में 'इतने और कोरोना पॉज़िटिव पाए गए', लिखा और बोला जाने लगा जबकि 'इतने लोग और कोरोना संक्रमित पाए गए' या 'इतने लोगों में और कोरोना पाया गया' कहने से कम से कम 'पॉज़िटिव' के बहुप्रचलित भाव 'रचनात्मक' की साख बची रह सकती थी।

इस कोरोना काल में एकाएक प्रचलन में आए '**वेबीनार**' (Webinar) ने एक बार फिर यह सिद्ध कर दिया है कि आवश्यकता आविष्कार की जननी है। 'वेबीनार' ने सेमीनार के लिए अभ्यस्त, पारंगत और उसमें रचे-बसे लोगों के लिए आशा के नए द्वार खोले और सेमीनार के अवसरों से वंचित व्यग्र और मुरझाए चेहरों में सावन की हरीतिमा भर दी है। प्रथम दृष्टि तो 'वेबीनार' सेमीनार के वज़न पर गढ़ा गया सद्यजात पद प्रतीत हुआ किन्तु गूगल गुरु से पूछने पर पता चला कि इसका जन्म बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध (अन्तिम दशक) में हो गया था। यह विश्व व्यापी संजाल (WWW) का अनोखा उपहार है। यह अलग बात है कि इसमें संगोष्ठी जैसी जीवन्तता नहीं मिलती किन्तु हमारे यहाँ इसके अचानक प्रचलन का श्रेय (?) कोरोना को ही है।

कोरोना एक विश्वव्यापी व्याधि और बहुत बड़ी विपदा बनकर प्रस्तुत है। ऐसी बीमारी जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती किन्तु हमारे यहाँ यह बीमारी ऐसे अनेक शब्द लेकर आई जिसने औसत या कम पढ़े-लिखे लोगों को भाषा के नए संसार से परिचित करा दिया। 'लॉक डाउन', 'वायरस', 'सोशल डिस्टेंसिंग, 'क्वॉरन्टीन', 'आइसोलेट्', 'कन्टामिनेट एरिया', 'वॉरियर', 'इम्यूनिटी' आदि। कहा जा चुका है कि विदेशी धरती पर होने वाली घटनाएँ, हलचलों और विचार-प्रवाह आदि को अपनी धरती पर आने से रोका नहीं जा सकता; रोका भी नहीं जाना चाहिए (नकारात्मक तत्वों को यथासंभव रोका भी जाना चाहिए) आखिरकार, वैश्वीकृत युग में हम जी रहे हैं। किन्तु यदि इस महाव्याधि के साथ प्रचलित होने वाले शब्द-पदों को हम अपना बनाकर प्रस्तुत करते; इस बीमारी के वृत्त में आने वाले और प्रयोग में लाए जाने वाले शब्दों को हम अपनी भाषा में अपना बताकर कहते तो इसका प्रत्यक्ष और त्वरित लाभ तो नहीं किन्तु भाषा के निर्माण में दूरगामी प्रभाव दिखाई देता। इसके अलावा जन सामान्य में इसका तात्कालिक प्रभाव भी यह पड़ता कि एक, क्वॉरन्टीन, आइसोलेट्, वायरस और वॉरियर जैसे शब्दों की मूल भावना को सर्वथा अपढ़ व्यक्ति भी समझ सकता। दूसरा, इन शब्दों का अजनबीपन और अपरिचय बीमारी के

भय को अधिक उग्र न बनाता। तीसरा, हमें यह न लगता कि बीमारी तो अजनबी है ही इसका परिचय कराने वाला अथवा रोकथाम करने वाला सारा वितान भी अजनबी है और सबसे महत्त्वपूर्ण और अन्तिम बात कि हम इस विपदा को निज भाषा में अपने लोगों से विमर्श कर पाते।

इस रोग का संक्रमण रोक पाना तो एक जटिल प्रक्रिया है ही, जिसके लिए संपूर्ण व्यवस्था और कर्त्ताधर्ता सन्नद्ध और संकल्पबद्ध हैं, किन्तु भाषागत संक्रमण को रोकने और इसे अपनी भाषा में प्रस्तुत और परिचित कराने का सबसे बड़ा दायित्व हमारे शिखर नेतृत्व का था जिन्हें '**लॉकडाउन**' न करके '**तालाबन्दी**' या '**सम्पूर्ण बन्द**' जैसा करना चाहिए था। दूसरा दायित्व, मुद्रित और दृश्य संचार माध्यमों का था। तीसरा दायित्व, उस प्रशासनिक इकाई का था जिन हाथों से विधायिका के निर्णयों को लिपिबद्ध करके प्रसारित किया जाता है। अफसोस यह है कि किसी भी स्तर में इसे लेकर सावधानी और सजगता का परिचय नहीं दिया गया। यह शायद इस सोच के चलते हुआ है कि **भाषा भी कोई मुद्दा है क्या**! उक्त विचारों से यदि किसी को यह लगता है कि मेरा दृष्टिकोण अंग्रेजी के विरोध का है, तो इसे मेरी अभिव्यक्ति की अक्षमता ही समझा जाना चाहिए। मेरा आशय और मेरी चिन्ता प्रत्येक नयी घटना और नए विचार-प्रवाह को अपनी भाषा में देखने-समझने की है और यह मंशा शिखर नेतृत्व के '**ग्लोबल**' बनाम '**लोकल**' की महत्वाकांक्षा की पूर्ति की दिशा में ही पहला चरण है। मैं उक्त दोनों शब्दों का हिन्दी रूप क्रमशः वैश्विक व स्थानिक न करके '**विदेशी**' बनाम '**स्वदेशी**' करना चाहूँगा।

सम्पर्क : *सतना (म.प्र.)*
मो. 9425 167567

डॉ. राजेन्द्र कुमार सिंघवी

हिन्दी आलोचना का वर्तमान : भाषा, प्रतिमान एवं विचारधारा

इक्कीसवीं सदी का हिन्दी साहित्य तीव्र गति से वैश्विक धरातल पर अपनी पहचान बनाने में सफल रहा है। साहित्य-रचना के मानक अब परम्परागत साँचे में नहीं हैं, उन पर तात्कालिकता का प्रभाव अधिक है। साहित्य अब भूमण्डलीकरण के साथ अपनी सार्थकता सिद्ध कर रहा है। ऐसी परिस्थिति में आलोचना भी साहित्यिक वातावरण के साथ कदमताल कर रही है, जहाँ किसी सैद्धान्तिक परिधि से रचना का मूल्यांकन न करके रचनाशीलता की पहचान पर बल है। इस नवीन परिदृश्य में आलोचना का वर्तमान और भविष्य की दिशा का मूल्यांकन भाषा, विचारधारा एवं प्रतिमान की दृष्टि से किया जाना समीचीन होगा।

भाषा : भाषा विचार-विनिमय का साधन है, जिसके माध्यम से मनुष्य स्वयं को अभिव्यक्त करता है। इसके द्वारा ही वह सामाजिक संरचना का हेतु बनता है। इसलिए भाषायी संरचना को समझना आवश्यक है। भाषा स्वयमेव ऐसी प्रक्रिया है जो परम्परा, परिवेश, व्यक्तित्व, विचार और अनुभव को सर्जनात्मक बनाती है। प्रसिद्ध आलोचक डॉ.रामस्वरूप चतुर्वेदी की मान्यता है कि उन्नीसवीं शती में विज्ञान के विकास ने परम्परागत धार्मिक आस्था को विघटित कर दिया था। बीसवीं शती में दो महायुद्धों ने मानवीय संवेदना को झकझोर कर रख दिया। परम्परागत सारे नैतिक-सांस्कृतिक मूल्य विघटित हो गए और व्यापक मानवतावाद की प्रतिष्ठा हुई।

वर्तमान परिदृश्य में रचना की भाषायी सर्जनशीलता का बारीकी से विश्लेषण किया जाने लगा है। नये आलोचकों की मान्यता है कि किसी विचार या अनुभव को दूसरे व्यक्ति में इस रूप में संक्रमित करना कि वहाँ उसका नया विकास संभव हो, सर्जन-प्रक्रिया का आरंभिक चरण है। इस अनुभव या विचार का संक्रमण भाषा से ही संभव है। इस हेतु भाषा और अनुभूति के अद्वैत को समझना होगा। अत: आने वाले समय में आलोचना में 'रूप तत्त्व' को प्रश्रय मिलता दिखाई दे रहा है। जहाँ रचना को भाषिक-संरचना के आलोक में विवेचित करने का प्रयास हो रहा है। उत्तर संरचनावाद, उत्तर आधुनिकतावाद ने इस दृष्टि को और व्यापकता प्रदान की है। फलत: रचना की आलोचना में भाषा के विविध अंग- शब्द-चयन, छंद, ध्वनि-समूह, बिम्ब-विधान, प्रतीक-योजना, लय, कथन-भंगिमा, वाक्य-वक्रता, पद-विन्यास आदि के विश्लेषण पर ध्यान दिया जाने लगा है।

भाषा का स्वरूप भी आलोचना को नई धार दे रहा है। भूण्डलीकरण ने हिन्दी को वैश्विक स्वरूप

प्रदान किया है। अब यह भारतीय उपमहाद्वीप के साथ मॉरीशस, इण्डोनेशिया, यूरोप एवं अन्य देशों में प्रवासी भारतीयों में गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुकी है। भारत में भी हिन्दी को सर्वग्राह्य मान्यता मिली है। फिल्म, टी.वी., बाजार, विज्ञापन आदि में हिन्दी का प्रचलन बढ़ गया है, जहाँ हिन्दी का शास्त्रीय रूप, तत्समनिष्ठता अथवा परिष्कृत रूप न रहकर संप्रेषणीय व्यावहारिक रूप प्रकट हुआ है। नवीन रचनाओं में नई हिन्दी का रूप दिखाई दे रहा है। आलोचक भी इसकी महत्ता को स्वीकार कर तदनुरूप मूल्यांकन कर रहा है।

उत्तर-आधुनिक चिंतन व भारतीय संवैधानिक मूल्यों के निरन्तर प्रसार से अस्मिताओं के आधार पर भाषायी-चिंतन आलोचनात्मक विमर्श के केन्द्र में आया है। स्त्री, दलित, आदिवासी, किसान आदि की सामान्य बोलचाल की शब्दावली को साहित्य में प्रश्रय मिलने लगा है, जिससे उनकी सभ्यता, परम्परा व अनुभूतिजन्य पीड़ा को अभिव्यक्ति मिल सके। आलोचना में विमर्श केन्द्रित मूल्यांकन में भाषा का मूल्यांकन भी संबंधित परिवेश के संदर्भ में किया जाने लगा है। लेकिन भारतीय सन्दर्भों में यह विमर्श-परम्परा एकांगी रूप में ही है, क्योंकि भारतीय समाज का स्वरूप बहुलतावादी होते हुए भी एकात्म स्वरूप से विकसित हुआ है। अत: समग्र आलोचना की दृष्टि से यह आगे गतिमान हो पाएगी, इसमें संदेह है।

परम्परागत साहित्य में लोकभाषा को सदैव दूसरे दर्जे पर रखा गया, किन्तु अब लोक भाषा अपना स्वाभाविक आकार गढ़ने लगी है। आंचलिक भाषाओं का साहित्य अब रचनाशीलता में स्थान बना रहा है और परम्परागत प्रतिमानों को ध्वस्त कर रहा है। सुखद पहलू यह है कि आंचलिक भारतीय भाषाओं के साहित्यिक उदय से हिन्दी और समृद्ध हो रही है। लोकगीत, लोक नाट्य, लोक वाणी की स्वीकार्यता से स्वाभाविक प्रस्तुति हो रही है।

समकालीन साहित्य में एक तरफ लोक वृत्त उभर रहा है, वहीं दूसरी तरफ रचनाएँ वैश्विक फलक पर पाँव भी प्रसार रही हैं। दोनों की दिशा पृथक् होते हुए भी महत्त्व है। एक पक्ष अपने अस्तित्व को स्थापित कर हिन्दी को समृद्ध कर रहा है, तो दूसरा पक्ष हिन्दी को वैश्विक परिदृश्य में स्थापित कर रहा है। दोनों की शृंखला नई आलोचना का विवेच्य विषय है। आज के समय में भाषायी प्रतिमान निश्चित नहीं किए जा सकते, क्योंकि उसकी दीवारें ही गिर रही हैं।

रचना की इस भाषा के अनुरूप आलोचना की भाषा में परिवर्तन का आग्रह करते हुए नामवर सिंह लिखते हैं- 'भाषा को जब तक हिन्दी आलोचना नहीं तोड़ेगी, तब तक वह एक ही जगह पर कवायद करती रहेगी। इसलिए रचनाकारों से हाथ जोड़कर मैं निवेदन करूँगा कि मित्रो, तुम लोगों ने तो अपनी भाषा तोड़ी है, हम आलोचकों को भी बताओ कि भाषा कैसे तोड़ी जाती है? जिस दिन यह भाषा तोड़कर हम नई भाषा बनाएँगे, आलोचना पढ़ने लायक होगी, अन्यथा यह चोरों की या उनके गिरोहों की एक कूट भाषा बनेगी, जिसमें खग बोलेगा और खग ही सुनेगा।'

प्रतिमान : विगत दो दशकों से हमारे सामाजिक जीवन में भी व्यापक बदलाव आए हैं। वैश्विक समाज सूचना क्रांति से बहुत छोटा प्रतीत होने लगा है। परम्परागत विचार, प्रतिबद्धताएँ एवं मूल्य लगभग अप्रासंगिक होते गए व उन्मुक्त सोच की तरफ दुनिया बढ़ रही है। साहित्य भी इससे अलग नहीं है। आलोचना भी तात्कालिक समस्याओं के संदर्भ में होने लगी है, जिसे किसी घेरे में बन्द भी नहीं रखा जा

सकता है। आज सोशल मीडिया पर हर व्यक्ति अपने विचार प्रकट करने के लिए स्वतंत्र है, अत: वहाँ साहित्यिक प्रतिमान स्थिर रहें, यह संभव भी नहीं है। देश-विदेश में घटित किसी भी घटना पर किसी रचना का जन्म और उस पर त्वरित प्रतिक्रियाओं से आलोचना के संदर्भ भी बदलते जा रहे हैं।

जहाँ तक आलोचना के प्रतिमानों की वस्तु-स्थिति का प्रश्न है, वे परम्परागत रूप में अब दिखाई नहीं दे रहे हैं। आचार्य शुक्ल, राम विलास शर्मा, डॉ. नगेन्द्र अथवा आचार्य द्विवेदी की तरह उद्देश्यनिष्ठता एवं सैद्धांतिकी का स्वरूप नहीं दिखाई देता। विगत शताब्दी की आलोचनाओं में पहले उद्देश्य निर्धारित होता था, उसके बाद सिद्धान्त निर्मित किए जाते, फिर उन सिद्धांतों के आधार पर कृति की परख की जाती थी। इन्हीं सिद्धांतों के आधार पर अनेक आलोचना प्रणालियों का जन्म हुआ, लेकिन विगत कुछ वर्षों से यह तकनीक भी अब स्वरूप बदल रही है। आलोचना में किसी निश्चित फलक का उपयोग दिखाई नहीं देता।

आलोचना की समकालीन परिस्थितियाँ बदलते हुए परिवेश के अनुरूप ही हैं। जहाँ ठहराव और अवकाश तो बिल्कुल भी नहीं है। अब सिद्धांतों की कसौटी पर कृति को कसने के स्थान पर सर्वप्रथम कृति के मूल कथ्य को ध्यान में रखकर सिद्धांत निर्मित किए जाते हैं, फिर एक सिरे से पुस्तक की व्याख्या या समीक्षा कर दी जाती है। सामाजिक-राजनैतिक परिस्थितियों को समझकर रचना की संपूर्णता को परखने की प्रवृत्ति अब लुप्त होती जा रही है। कतिपय आलोचनाएँ अपवाद हो सकती हैं, किन्तु यही सामान्य प्रवृत्ति दिखाई दे रही है।

आलोचना की मात्रा तो बहुत अधिक है, परन्तु उसके लेखन के प्रतिमान निश्चित नहीं हैं। रचना के तथ्यों का आलोचक वर्णन करके आगे बढ़ जाता है, जहाँ रचना की प्रशंसा तो है, परन्तु मूल्यांकन नहीं। यह कटु सत्य है कि आलोचना अब रचना केन्द्रित होने के स्थान पर रचनाकार केन्द्रित होने लगी है। आलोचक भी इसी भ्रम में हैं कि उसकी चर्चा से लेखक स्थापित हो रहे हैं और उपेक्षा से वे नगण्य, तो स्पष्टत: आलोचना के मूल्य ही विस्थापित हो रहे हैं।

एक प्रश्न उठता है कि क्या पुराने प्रतिमानों के आधार पर नई रचनाओं की समीक्षा संभव है? इस दृष्टि से तो सही उत्तर यही होगा कि पुराने प्रतिमानों के आलोक में अद्यतन रचना का मूल्यांकन संभव नहीं है। लेकिन रचना के बदलते स्वरूप के साथ आलोचना के नवीन प्रतिमान तय किए जाने अपेक्षित हैं, जो चिंता का विषय भी है। आज अनेक विमर्श केन्द्रित रचनाएँ सामने आ रही हैं, परन्तु नई आलोचना प्रणालियाँ विकसित नहीं होने से प्रतिमान भी स्थापित नहीं हो पा रहे हैं।

समकालीन रचनाओं का मूल्यांकन सम-सामयिक संदर्भों में ही किया जा सकता है और रचनाशीलता के समानांतर ही आलोचना के प्रतिमानों का निर्माण होता है। प्रत्येक समय की चुनौतियाँ होती हैं और उसके समाधान तात्कालिक रचनाओं में तलाशने का कार्य आलोचक का है। आलोचक ही अपनी प्रखर दृष्टि से पुराने प्रतिमानों को नया रूप दे सकता है और समय के अनुकूल प्रतिमान निर्मित भी कर सकता है। हिन्दी में विविध प्रकार की आलोचनाएँ प्रचलित हैं, जैसे- अखबारी आलोचना, पुस्तक समीक्षा, अध्यापकीय आलोचना, आस्वादपरक आलोचना, पराआलोचना या साहित्य सिद्धांत आदि। हिन्दी में जिसे साहित्य की मुख्यधारा कहा जाता है, उसमें साहित्य-सिद्धांत का पूरी तरह अकाल ही है। पहले

उपनिवेशवाद के कारण और अब भूमण्डलीकरण के प्रभाव में, जैसे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उधार से काम चलाने की हमारी आदत बन गई है, उसका विस्तार साहित्य की आलोचना में है और साहित्य-सिद्धांत में भी।

हिन्दी आलोचना में आज सर्वाधिक आवश्यकता समकालीन रचनाशीलता की प्रवृत्तियों को पहचान कर आलोचना के प्रतिमान निर्मित किए जाने की है, ताकि आलोचना की भावी दिशा सही गंतव्य की ओर बढ़ सके। इससे भारतेन्दुकाल से जन्मी, शुक्ल काल में विकसित और शुक्लोत्तर काल में चरम तक पहुँची हिन्दी आलोचना वैश्विक साहित्यिक आलोचना के समकक्ष स्तर को प्राप्त कर सके। गंभीरता, अध्ययन-निष्ठता, पैनी दृष्टि और साहित्यिक वातावरण इस दृष्टि से निर्मित करना वर्तमान समय की प्रमुख आवश्यकता प्रतीत हो रही है।

विचारधारा : विचारधारा रचना तथा आलोचना की रीढ़ होती है, जिसके आधार पर उसकी महत्ता, उपयोगिता एवं प्रासंगिकता सिद्ध होती है। हिन्दी आलोचना अपने आरंभ से किसी न किसी आधार को लेकर चली है, चाहे वह सैद्धांतिक हो या व्यावहारिक; किसी वाद के सिद्धान्तों के परिप्रेक्ष्य में हो अथवा विमर्श केन्द्रित अवधारणाओं पर आधारित। यह क्रम बीसवीं सदी के अंतिम दशक तक किसी न किसी रूप में विद्यमान रहा। यहाँ तक कि आलोचक को भी किसी निश्चित पक्ष का विचारक मानकर निर्णय किया जाता रहा। नई सदी की आलोचना उत्तर-आधुनिक दौर में है, जहाँ विचारधाराओं से मुक्ति की बात कही जा रही है। यहाँ तक कि विचारधारा शब्द आलोचना में शत्रुता अथवा आतंक का प्रतीक समझा जाने लगा है।

समकालीन आलोचना में विचार की जगह सूचना ने ले ली है। रचना का मूल्यांकन सतही स्तर पर होने लगा है। कई बार तो आलोचना में मूल्यांकन कम विज्ञापन अधिक प्रतीत होने लगता है। सूचना के विनिमय में रचना में वर्णित घटनाओं की पृष्ठभूमि उभर नहीं पाती। इसी कारण आलोचक रचना के पक्ष अथवा विपक्ष में खड़ा होने के बजाय किसी सुरक्षित कोने की तलाश में रहता है। गंभीर आलोचना का स्थान परिचयात्मक आलोचना ने ले लिया है। विचार और इतिहास से विमुख होकर आलोचकों में समझौतावादी लेखन करने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है।

विचारधारा साहित्यिक कृति का आन्तरिक पक्ष है, जिससे उसका व्यक्तित्व प्रतिबिम्बित होता है। यह एक प्रकार का दृष्टिकोण भी है, जो समय और परिस्थिति के संघर्ष में जन्म लेता है। इसे लेखक की चेतना का आधार कहना समीचीन होगा। विचारधारा के अभाव में वह कृति के साथ कभी न्याय नहीं कर पाएगा। वैसे विचारधारा किसी न किसी रूप में रचना में विद्यमान रहती है, जिसका सही मूल्यांकन विचारधारा के अनुसार ही हो सकता है। लेकिन वैचारिक आग्रह की प्रबलता में लेखक को अन्य पक्ष के मतों का भी सम्मान करना चाहिए। वैचारिक आग्रह कहीं दुराग्रह के कारण अच्छी कृति का भी उपहास न उड़ाए, यह आवश्यक है। विचारधारा स्वयं की दृष्टि है, दूसरों पर थोपने का विषय नहीं।

एक समर्थ आलोचक वर्तमान की आँख से समकालीन रचना को देखता-समझता है, लेकिन अतीत की स्मृतियाँ वर्तमान को पुष्ट करती हैं। अत: प्रत्येक युग का दायित्व है कि वह कृति का मूल्यांकन इतिहास और समकाल के संदर्भों में करे। हिन्दी आलोचना के संकट का सबसे बड़ा कारण है- आलोचना

में साहित्यिक को सामाजिक से अलग समझने और मानने की प्रवृत्ति। इसी प्रवृत्ति के कारण आलोचनात्मक व्यवहार के दौरान राजनीति, विचारधारा और सभ्यता के सवालों को साहित्य की आलोचना से बाहर कर दिया गया है।

भूमण्डलीकरण में जो चुनौतियाँ साहित्यिक दृष्टि से उभर रही हैं उनमें प्रमुख हैं- मुक्त बाज़ारवाद, विकृत उपभोक्तावाद, राजनीतिक अधिनायकवाद, सांस्कृतिक अवमूल्यन, मूल्य-संक्रमण, हिंसक वर्चस्व, भ्रष्ट आचरण, वैचारिक दुराग्रह आदि। समकालीन रचनाओं में इन बिन्दुओं पर बहुत कुछ लिखा भी जा रहा है। लेकिन आलोचना में अभी इन परिस्थितियों के कारकों की खोज नहीं हो पाई, जिससे रचनाएँ जन्म ले रही हैं। ऐसी स्थिति में सतही 'पुस्तक समीक्षा' ही आलोचना-मार्ग बनती जा रही है। हिन्दी आलोचना में अब पूर्ण गंभीरता नए परिवेश के अनुरूप आवश्यक है, जहाँ परम्परागत मूल्यों का आश्रय व विरासत के साथ नवीन प्रतिमानों का निर्धारण भी हो।

सम्पर्क : *निम्बाहेड़ा (राजस्थान)*
मो. 9828608270

गोवर्धन यादव

हिन्दी की विश्वव्यापकता

हिन्दी हमारी आन-बान-शान की भाषा है। हमारी अस्मिता की भाषा है। हमारी सांस्कृतिक पहचान की भाषा है। राष्ट्रहित की बात हो या फिर जनहित की, इसके योगदान को कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता। इसकी अमोघ शक्ति के बारे में पूरा विश्व भली-भाँति परिचित है। यह उस आँधी का नाम है कि जिसने ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ों को उखाड़ फेंका। कभी यह कहा जाता था कि उसका सूरज कभी अस्त नहीं होगा। उसने अपनी शक्ति से विश्व को परिचित करवा दिया है।

अंग्रेजी विश्व की संपर्क भाषा है, यह कहते हुए अंग्रेजीदाँ कहते नहीं थकते हैं, जबकि हकीकत ठीक इसके विपरीत है। विश्व में सबसे ज्यादा चीनी भाषा 'मन्दारिन' बोली जाती है और दूसरा स्थान हिन्दी का है। जबकि रूसी, स्पेनिज, पोर्तुगीच और डच आदि ग्यारह भाषाओं में अंग्रेजी बारहवें पादान पर है। विश्व की चार प्रतिशत आबादी ही अंग्रेजी बोलती-लिखती और समझती है। सवाल उठना लाजमी है कि यह कैसी विश्वभाषा है? हमारी हिन्दी वैज्ञानिक भाषा है, जबकि अंग्रेजी अवैज्ञानिक है। यह बिना लगाम की घोड़ी के समान है। इंग्लैण्ड के जंगली लोगों ने जब इसे बोलना शुरू किया तो इसे अंग्रेजी जुबान का नाम मिला, इससे पूर्व वहाँ लैटिन भाषा प्रचलन में थी। हिन्दी के पास अपने मौलिक शब्दों की संख्या साठ लाख है, जबकि अंग्रेजी के पास लगभग डेढ़ लाख शब्द हैं, और वे भी इधर-उधर से उधार लिए गए हैं। हिन्दी भाषा की विशेषताएँ और आकर्षण -

1-संस्कृत की दुहिता होने के कारण हिन्दी बहुसंख्य लोगों के द्वारा बोली और समझी जाती है। 2-इसका साहित्यिक ज्ञान विभिन्न भाषाओं में विस्तृत तथा उच्च कोटि का है। 3-इसका शब्द भंडार तथा विचार क्षेत्र व्यापक है। 4- इसका व्याकरण सरल और प्रामाणिक है। 5- इसकी ग्राह्य शक्ति प्रगाढ़ है जिससे वह आवश्यकतानुसार देशी-विदेशी भाषाओं के शब्दों को सरलता से अपने में आत्मसात कर लेती है। 6-इसकी लिपि सरल है। 7-जैसा लिखा जाता वैसा पढ़ा जाता है। 8-इसमें भावात्मक एकता स्थापित करने की पूरी सामर्थ्य है। इन्हीं सारी विशेषताओं को देखते हुए देश के विभिन्न भाषा-भाषियों, उदारचेतना से संपन्न बुद्धिजीवियों और राष्ट्र हितैशियों ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित किया था।

अर्थ-शक्ति संपन्न भारत, परमाणु शक्ति संपन्न राष्ट्र भारत, संस्कृति और दर्शन के क्षेत्र में पथ-प्रदर्शक भारत एवं संसार के सबसे बड़े बाजारों में एक भारत से निकटता बढ़ाने के लिए विश्व का हर देश लालायित है। यही कारण है कि विश्व के अनेक देश हिन्दी शिक्षण की उच्चस्तरीय व्यवस्था कर रहे हैं। इन

देशों में अमरीका, रूस, इंग्लैण्ड, फ्रांस, चीन, जापान, आस्ट्रेलिया, कनाडा जैसे विश्व के प्रभावशाली देश भी शामिल हैं। इतना ही नहीं प्रवासी भारतीयों ने अपनी संस्कृति की रक्षा के लिए हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था विश्व में व्यापक स्तर पर की है। वे हिन्दी की सुरक्षा, प्रतिष्ठा एवं प्रचार के लिए पूरी तरह प्रतिबद्ध हैं।

संसार में कुल मिलाकर लगभग 2800 भाषाएँ हैं। इनमें 13 ऐसी भाषाएँ हैं, जिनके बोलने वालों की संख्या 8 करोड़ से अधिक है। ताजा आँकड़ें के अनुसार संसार की भाषाओं में, हिन्दी भाषा को द्वितीय स्थान प्राप्त है। भारत के बाहर वर्मा, श्रीलंका, फीजी, मलाया, दक्षिण और पूर्वी अफ्रीका में भी हिन्दी बोलने वालों की संख्या ज्यादा है। एशिया महादेश की भाषाओं में हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है, जो अपने देश के बाहर भी बोली और लिखी जाती है, क्योंकि यह एक जीवित और सशक्त भाषा है।

भारत में हिन्दी जानने वालों की संख्या सौ करोड़ है। भारत के बाहर पाकिस्तान, इजराइल, ओमान, इक्काडोर, फिजी, इराक, बांगलादेश, ग्रीस, ग्वालेमाटा, म्यांमार, यमन, त्रिनीदाद, सउदी अरब, पेरू, रूस, कतर, मॉरीशस, सूरीनाम, गुयाना, इंग्लैण्ड आदि में बोली जाती है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी को राष्ट्रसंघ की आधिकारिक भाषा की मान्यता मिलने जा रही है। वर्तमान में अंग्रेजी, फ्रेंच,चीनी, रूसी एवं स्पेनिश भाषाओं को राष्ट्रसंघ की मान्यता प्राप्त है।

हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है, जिसे विदेशियों ने सर्वप्रथम विश्वपटल पर रखा। हिन्दी के शोधार्थी डॉ.जुइजिपियोतैस्सी तोरी ने फ्लोरेंस विश्वविद्यालय इटली में रामचरितमानस और वाल्मीकि रामायण का तुलनात्मक अध्ययन 1911 में आरंभ किया। भारत की संस्कृति ने उन पर ऐसा प्रभाव डाला कि स्वदेश 'इटली' छोड़कर जीवनपर्यंत बीकानेर में रहे। साम्यवादी देशों में तुलसीकृत रामचरितमानस की लोकप्रियता देख, स्टालिन ने द्वितीय विश्वयुद्ध के समय अकादमीशियन अलकसई वरान्निकोव द्वारा रूसी भाषा में पद्यानुवाद कराया, जिसमें साढ़े दस वर्ष लगे। तुलसीभक्त बेल्जियम में जन्मे फादर कामिल बुल्के, हिन्दी के कारण भारत की नागरिकता ली। तुलसी की काव्यकृति हनुमान चालीसा का रोमानियन भाषा में, बुकारेस्ट के प्रो. जार्ज अंका ने डॉ. यतीन्द्र तिवारी के सहयोग से अनुवाद किया।

अमेरिका के कई विश्वविद्यालयों में हिन्दी पढ़ाई जाती है। यथा, पेनस्टेटयेल, लायोला, शिकागो, वाशिंगटन, ड्यूक, आयोवा, ओरेगान, मिशिगन, कोलंबिया, हवाई इलिनाय, अलवामा, युनिवर्सिटी आफ बर्जिनिया, युनि.आफ मीनेसोटा, फ्लोरिडा, वैदिक वि.वि.सिराक्यूज, केलिफोर्निया वि.वि., बर्कले युनिवर्सिटी आफ टेक्सास, रटगर्स, एमरी, नार्थ केरोलाइना स्टेट, एन.वाय.यू.इन्डियाना, यूसीएलए, मेनीटावा, लाट्रोव तथा केलगेरी विश्वविद्यालय आदि जहाँ हिन्दी की शिक्षा दी जाती है।

आधुनिक चीन में हिन्दी की विधिवत शुरुआत 1942 में यूनान प्रांत पूर्वी भाषा और साहित्य कॉलेज में हिन्दी विभाग की स्थापना के साथ हुई। यह वह समय था जब सारा संसार द्वितीय विश्वयुद्ध की चपेट में था। ऐसी स्थिति में अपनी सुरक्षा के लिए हिन्दी विभाग एक जगह से दूसरी जगह स्थानांतरित होता रहा। तीन वर्षों बाद 1945 में हिन्दी विभाग यूनान प्रांत से स्थान्तरित होकर छड़गछिन में आ गया और साल भर बाद हिन्दी चीन की राजधानी में स्थित पीकिंग वि.वि. के विदेशी भाषापीठ में आसीन हुई और तबसे यहीं फूलती-फलती रही। यहाँ हिन्दी के अलावा संस्कृत, पालि, और उर्दू भाषा साहित्य का

अध्ययन-अध्यापन होता है। 1949 से 1959 तक का समय विकास की दृष्टि से बेहतरीन रहा। बाद के वर्षों में काफी शिथिल पड़ा। 1960-1979 तक का समय चीनी जनता और समाज के कठिनाइयों भरे दिन थे, हिन्दी विभाग सिकुड़कर छोटा हो गया। 1980-1999 का यह दौर परिवर्तन का दौर रहा। हिन्दी की मशाल को प्रज्ज्वलित करने में तीन प्राध्यापकों का योगदान विस्मृत नहीं किया जा सकता। वे हैं प्रो.यीनह्युवैन, प्रो.लियो आनवू और प्रो. चिनतिंनहान। इन तीनों विद्वानों ने अपनी लगन, कर्मठता और आदर्श के बल पर हिन्दी के लिए जितना कार्य किया वह प्रेरणादायक है।

जापान में विदेशी भाषाओं के अध्ययन-अध्यापन के दो प्रमुख केन्द्र हैं। तोक्यो युनि. आफ फारेन स्टडीज एवं ओसाका युनि.आफ फारेन स्टडीज। इन दोनों ही वि.वि. में सन 1011-1021 से ही हिन्दुस्थानी भाषा के रूप में हिन्दी-उर्दू की पढ़ाई का सिलसिला प्रारंभ हो गया था। इसकी नींव डालने वाले विद्वान श्री.प्रो.रेइची गामो तथा प्रो.एइजो सावा हैं। 1911 में डिग्रीकोर्स आफ हिन्दुस्तानी एण्ड तमिल शुरू हो गया था। 1909 से 1914 के मध्य प्रसिद्ध सेनानी मोहम्मद बरकतउल्ला इस विश्वविद्यालय में 'हिन्दुस्थानी भाषा' के विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में नियुक्त किए गए। ये दोनों वि.वि. सरकारी विश्वविद्यालय हैं, जहाँ 4 वर्षीय पाठ्यक्रम चलाए जाते हैं। आरम्भ में प्रो. देई ने तोक्यो में तथा प्रो.एइजो स्ववा ने ओकासा में हिन्दी अध्ययन-अध्यापन की नींव डाली। ये विद्वान प्रोफेसर हिन्दी के साथ ही उर्दू भी पढ़ाते थे। 2003 में सूरीनाम में आयोजित सातवें विश्व हिन्दी सम्मेलन में प्रो. तोसियो तनाका को 'विश्व हिन्दी सम्मान' से सम्मानित किया गया।

तोकियो और ओसाका के राष्ट्रीय वि.वि. के अतिरिक्त अन्य कई गैर सरकारी वि.वि. और शिक्षा संस्थान भी हैं, जहाँ वैकल्पिक विषय के रूप में प्रारंभिक और माध्यमिक कक्षाओं तक हिन्दी पढ़ने-पढ़ाने की व्यवस्था है। ताकुशोक वि.वि. के प्रो. हेदेआकि इशिदा, सोनोदा वीमेन्स युनिवर्सिटी के प्रो. उचिदा अराकि और ताइगेन हशिमोतो, तोमाया कोकुसाई वि.वि. के प्रो. शिगोओ अराकि और मिताका शहर में स्थित एशिया-अफ्रीका भाषा के प्रो. योइचि युकिशिता का नाम अत्यंत प्रसिद्ध है।

मॉरीशस में भारतीय मजदूरों के आगमन के साथ ही इस भूमि पर हिन्दी का प्रवेश हुआ। जिन मजदूरों को भारत के भोजपुर इलाके से यहाँ लाए थे 'गिरमिटिया' कहलाए। वे अपने साथ झोली में रामचरितमानस, हनुमान चालिसा, महाभारत जैसे पवित्र ग्रंथ लेकर आए। इन्हें विरासत में समृद्ध साहित्य, धर्म, और संस्कृति का ज्ञान था। अपनी जमीन से उजड़े-उखड़े इन मजदूरों को नयी जमीन, यातना शिविर में अपने को जीवित रखने, स्थापित करने और अपनी अस्मिता को बनाए रखने के लिए भोजपुरी और हिन्दी का सहारा ही सबसे बड़ा अवलंबन था। मजदूरी की क्रूर नियति से दुखी और हताश ये मजदूर कभी विरहा, कभी कजरी तो कभी हनुमान चालीसा की पंक्तियों से अपनी आंतरिक शक्ति बचा रखने में सहायक होते और रात में रामचरितमानस का पाठ उनकी थकान मिटाकर हौसला बढ़ाते। कई अवरोधों के बावजूद बैठकें चलतीं और वे भाषा के साथ संस्कृति और धर्म को गति देते रहे। हिन्दू महासभा, आर्यसभा, हिन्दी प्रचारिणी सभा तथा अन्य संस्थानों के सहयोग तथा पण्डित विष्णुदयाल और डॉ. शिवसागर रामगुलाम के नेतृत्व में भारतीय संस्कृति और इसकी वाहक हिन्दी अपनी उत्कृष्टता पाने में सफल हुई। आज महात्मा गाँधी संस्थान और इन्दिरा गाँधी सांस्कृतिक केन्द्र, भाषा प्रचार और सांस्कृतिक

गतिविधियों को विस्तार दे रहे हैं। भारत सरकार के सहयोग से अब हिन्दी स्पीकिंग यूनियन तथा रवीन्द्रनाथ टैगोर संस्थान भी इस सांस्कृतिक अभियान में जुड़ गए हैं, जिससे हिन्दी सचिवालय की स्थापना में नया आयाम मिला है।

थाईलैण्ड में हिन्दी अध्ययन-अध्यापन का कार्यक्रम सबसे पहले थाई-भारत सांस्कृतिक आश्रम से शुरू हुआ जिसकी स्थापना 1943 में स्वामी सत्यानन्दपुरीजी ने की थी। आचार्य डॉ. करुणा कुसलासायजी पहले थाई विद्वान थे, जो हिन्दी पढ़ने भारत आए थे। महात्मा गाँधी से सारनाथ में मिले और जब वे लौटे तो थाई-भारत सांस्कृतिक आश्रम में ही हिन्दी पढ़ाना शुरू किया और बैंकाक के भारतीय दूतावास में नौकरी शुरू की।

1989 में सिल्पाकोव वि.वि. के पुरातत्व विज्ञान संकाय के प्राच्य भाषा विभाग में एम.ए.संस्कृत पाठ्यक्रम बनाया गया। उस समय आचार्य डॉ. चम्लोंग शरफदनूक हिन्दी शिक्षक थे। 1966 में वि.वि. के पुरातत्व विज्ञान संकाय के प्राच्य भाषा विभाग के संस्कृत अध्यापन केन्द्र की, भारतीय आगन्तुक डॉ. सत्यव्रत शास्त्री के द्वारा स्थापना की गई। 1993 में थमसात वि.वि. में थाईलैण्ड के भारतीय व्यापारियों के सहयोग से भारत अध्ययन केन्द्र की स्थापना हुई। डॉ. करुणा कुशलासाय, डॉ. चिरफद प्राकन्विध्या एवं आचार्य डॉ. चम्लोंग शरफदनूक तीनों ने हिन्दी कक्षाएँ चलायीं।

सम्पर्क : *छिन्दवाड़ा (म.प्र.)*
मो. 9424356400

डॉ. मनमोहन प्रकाश श्रीवास्तव/डॉ. स्नेहलता श्रीवास्तव

पंडित दीनदयाल उपाध्याय : नये प्रतिमान गढ़ती वैज्ञानिक अवधारणाएँ

गौरवमय युगपुरुष, प्रखर राष्ट्रवादी विचारक, समर्पित देशभक्त, भारतीय संस्कृति और समाज के उन्नायक, नवोन्मेषी चिंतक और सूक्ष्म बुद्धि सम्पन्न डॉ. दीनदयाल उपाध्याय का चिंतन विज्ञान, अध्यात्म, साहित्य, दर्शन, संस्कृति, राजनीति, शिक्षा और युगानुरूप चिंतन का समुच्चय है। हम इस लेख के माध्यम से उनके समग्र मानव दर्शन के वैज्ञानिक बिन्दुओं को रेखांकित करते हुए भावी विकास में उसकी भूमिका को तलाशने का प्रयत्न किया गया है।

विज्ञान मनुष्य की अनंत शक्तियों का विद्युत आलोक है, उसकी नवोन्मेषी प्रज्ञा का प्रकाश है। इस प्रकाश में परिवेश के प्रति सजगता और घटनाओं का कार्य-कारण भाव से अवलोकन, अन्वेषण करना मानव का सहज वैज्ञानिक स्वभाव है। भारत में इस स्वभाव की विशेष आवश्यकता है क्योंकि यहाँ शिक्षा का प्रतिशत कम है और उसमें भी वैज्ञानिक शिक्षा का आधार तो और भी कम है। इसी वजह से आज भी लोग अंध-विश्वास, जादू-टोने, रूढ़ियों, कुरीतियों आदि का शिकार हो जाते हैं। वैज्ञानिक उपकरणों, उत्पादों का सही ढंग से उपयोग नहीं कर पाते हैं। वैश्वीकरण और सूचना प्रौद्योगिकी के इस युग में वैज्ञानिक सोच ही राष्ट्र और समाज के विकास का हेतु बन सकती है, क्योंकि सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक और चारित्रिक विकास का क्रम वैज्ञानिक और तकनीकी विकास पर निर्भर करता है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण ही राष्ट्र के विकास और उसकी वैज्ञानिक व तकनीकी प्रगति का आधार होता है।

पं. दीनदयाल उपाध्याय का वैज्ञानिक चिंतन समस्त मानवता का पोषक है। आपके अनुसार चराचर जगत को संतुलित, स्वस्थ व सुन्दर रूप में संरक्षित करके ही मनुष्य मात्र को पूर्णता की ओर अग्रसर कर सकते हैं। जीवन-कला व इनके साहित्य, भाषणों आदि से स्पष्ट है कि उनका चिंतन प्रकृति विज्ञान, भौतिकी, रसायन, जैविकी, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान एवं तकनीकी विज्ञान के रस से पल्लवित है।

वे मानते हैं कि सत्य पर आधारित और प्रयोगों द्वारा प्रमाणित अवधारणाएँ और विचार ही विज्ञान है। वर्तमान सदी विज्ञान की सदी है। आज नित्य नये अविष्कार, अवधारणाएँ सामने आ रही हैं जो एक ओर तो मानव जीवन को सहज, सरल बना रही हैं, उसकी समस्याओं को कम करने में लगी हुई हैं, वहीं दूसरी ओर मानव सभ्यता को चिंता में भी डाले हुए हैं। इन वैज्ञानिक उपलब्धियों ने ही आज दुनिया को तीसरे विश्व युद्ध की कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है।

'राष्ट्रवाद की सही कल्पना' शीर्षक आलेख में उपाध्याय जी लिखते हैं कि पश्चिम के ज्ञान-विज्ञान

के साथ ही पश्चिम देशों के रहन-सहन, बोलचाल, खान-पान आदि की रीतियाँ भी हमारे देश में आयी हैं। भौतिक विज्ञान ही नहीं, अपितु नीतिशास्त्र, राज्य व्यवस्था, अर्थनीति तथा समाज धारणा के क्षेत्र में भी इन देशों के मानदण्ड हमारे मानक बन गये। (पं. दीनदयाल उपाध्याय : 'राष्ट्रवाद की सही कल्पना', एकात्मक मानव दर्शन, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 7) उपाध्याय जी के अनुसार विज्ञान सार्वभौमिक है, सबके उपयोग के लिये है, इसलिये ''विश्व का ज्ञान हमारी थाती है। मानव जाति का अनुभव हमारी सम्पत्ति है। विज्ञान किसी देश विशेष की बपौती नहीं है, वह हमारे भी अभ्युदय का साधन बनेगा। (पं. दीनदयाल उपाध्याय : भारतीय जनसंघ 'घोषणा एवं प्रस्ताव' भाग-1' विट्ठल भाई पटेल भवन, रफी मार्ग, दिल्ली, पृष्ठ 4) वे कहते हैं जो विज्ञान हमारे लिये प्रगति मार्ग प्रशस्त करता हो, वह किसी भी देश से प्राप्त होता हो, हमें उसे स्वीकारना चाहिए। जो विज्ञान प्रगति का लक्षण है उसे स्थिर मानकर चलना अवैज्ञानिक दृष्टिकोण है। (पं. दीनदयाल उपाध्याय : 'राष्ट्रीय जीवन के अनुकूल अर्थ - रचन,' एकात्म मानव दर्शन, सुरुचि प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 67) उपाध्याय जी के वैज्ञानिक दृष्टिकोण को उनके द्वारा कार्ल मार्क्स के संबंध में दिये गये इस विचार से समझ सकते हैं - वे कहते हैं कि कार्ल मार्क्स का सिद्धान्त देश और काल दोनों ही दृष्टियों से इतना बदल चुका है कि आज हम मार्क्सवादी विश्लेषण को तोते की तरह रटकर, आँख मूँद कर भारत पर लागू करें तो वैज्ञानिक अथवा विवेकपूर्ण दृष्टिकोण नहीं कहा जाएगा। विज्ञान भी उन्हीं सिद्धान्तों, विश्लेषणों को मान्य करता है जो प्रामाणिक और सत्य हों, अर्थात् हमें सत्य को स्वीकारना होगा और असत्य को छोड़ना होगा। (पं. दीनदयाल उपाध्याय : 'एकात्म मानववाद', एकात्म मानव दर्शन, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 15-16)

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि पं. दीनदयाल उपाध्याय जी के अनुसार विज्ञान सृजन की मूल प्रेरणा है। उसका लक्ष्य मनुष्य मात्र का कल्याण करना है, वह देश-काल की सीमा में आबद्ध नहीं है।

हम आस-पास जो भी देखते हैं, अनुभव करते हैं, फिर वह चाहे जैविक घटक हो, या निर्जीव घटक हो, प्रकृति का ही अंश है। हमारे आस-पास का वातावरण नदी-नाले, भूमि-पहाड़, समुद्र, पेड़-पौधे, जीव जन्तु आदि से पोषित है। प्रकृति सभी जीवों का आधार है। प्रकृति है, तो जीवन है। इसलिए पं. दीनदयाल उपाध्याय जी ने चिंता व्यक्त करते हुए कहा है प्राकृतिक संसाधनों की एक सीमा है। उनका उच्छृंखल दोहन नहीं करना चाहिए। प्रकृति में एक संतुलन है प्रकृति अपनी पद्धति से क्षय की पूर्ति करती रहती है। आज मानव इतनी तेजी से उसका विनाश कर रहा है कि न तो प्रकृति क्षतिपूर्ति कर पाती है और न उसका संतुलन ही टिक पाता है। प्रत्येक क्रिया के सर्वांगीण परिणामों का विचार करने लायक ज्ञान का अभी भी मानव के पास अभाव है। अत: प्राकृतिक संसाधनों की मर्यादा का उल्लंघन करने वाला उत्पादन वर्जनीय हैं। (पं. दीनदयाल उपाध्याय : भारतीय अर्थनीति विकास की एक दिशा', राष्ट्रधर्म पुस्तक प्रकाशन, लखनऊ, पृष्ठ 26) आपके अनुसार प्रकृति की संपदा की मर्यादा की चिंता न भी करें तो कम से कम इतना तो हमें मानना ही पड़ेगा कि प्रकृति में विभिन्न वस्तुओं के बीच एक परस्परालम्बी संबंध है। हम प्रकृति से उतना लें कि वह कमी को स्वयं पुन:पूरित कर ले। (पं. दीनदयाल उपाध्याय : 'राष्ट्रवाद जीवन के अनुकूल अर्थ', एकात्म मानव दर्शन, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 60-61) वे मानते हैं कि मानव की प्रकृति विजय की अवधारणा अहंवादी है। प्रकृति मातृवत् पूज्य है, उसका उच्छृंखल दोहन नहीं होना

चाहिए। (डॉ. जगदीश प्रसाद शर्मा : पं. दीनदयाल उपाध्याय के दार्शनिक और शैक्षिक विचार एवं वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उनकी प्रासंगिकता, लक्ष्मी प्रकाशन, मथुरा, पृष्ठ 178) इसे विडम्बना ही कहेंगे कि पंडित उपाध्याय जी द्वारा इतने वर्ष पूर्व व्यक्त की गई पर्यावरणीय चिंता के बावजूद आज भी हम ''प्रकृति संरक्षण'' की दिशा में बहुत आगे नहीं बढ़े हैं। अपितु आज भी हम अपने कृत्यों से, आविष्कारों से प्रकृति को दूषित करने, अविवेक एवं स्वार्थपूर्ण दोहन के साथ असंतुलित करने में लगे हुए हैं।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का एकात्मवाद उनके वैज्ञानिक चिंतन का प्रतिबिम्ब है (जो पिंड में है, वही ब्रह्माण्ड में है। अंश एवं सम्पूर्ण तत्वत: एक है)। वे स्वीकार करते हैं कि जीवन में अनेकता अथवा विविधता है, किन्तु उनके मूल में निहित एकता को खोज निकालने का हमने सदैव प्रयत्न किया है। यह प्रयत्न पूर्णत: वैज्ञानिक है। विज्ञानवेत्ता का प्रयत्न रहता है कि वह जगत में दिखने वाली अव्यवस्था में व्यवस्था ढूँढ़ निकाले, उनके नियमों का पता लगाए, तथा तदनुसार व्यवहार के नियम बनाए। रसायन शास्त्रियों ने सम्पूर्ण भौतिक जगत में से कुछ आधारभूत तत्व ढूँढ़ निकाले तथा बताया कि सृष्टि उनसे ही बनी है। भौतिकशास्त्री उससे भी आगे गये और उन्होंने उन तत्वों के मूल में निहित शक्ति अर्थात चेतना को खोज निकाला। (पं. दीनदयाल उपाध्याय : 'एकात्म दर्शन' दीनदयाल शोध संस्थान, नई दिल्ली, पृष्ठ 17) आज हमारे समाज में, राज्य में, राष्ट्र में और यहाँ तक कि सम्पूर्ण प्रकृति में समस्याओं का भंडार है। सब लोग समस्याओं की ओर ही संकेत करते हैं, कितने हैं जो हमारे समक्ष हल रखते हैं- जिसकी सबसे ज्यादा आवश्यकता है। हमारे अनुसार युवाओं को इस दिशा में सोचना चाहिए, जागृत होना चाहिए, आगे आना चाहिए।

विविधवर्णी वनस्पतियाँ, बहुवेशी प्राणी, सूक्ष्म और शक्तिशाली जीव सभी इस रहस्यमयी प्रकृति के जैविक घटक हैं तथा उसे पूर्णता प्रदान करते हैं। प्रकृति में ये सभी चक्रीय रूप में उपस्थित हैं, मिटते-बनते रहते हैं। इस प्रकार सभी जीव प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से सृष्टि चक्र और खाद्य-शृंखला के अंश हैं। पं. दीनदयाल उपाध्याय सृष्टि चक्र की तात्विक व्याख्या को अपने 'कर्मवाद' व 'परमार्थवाद' का आधार मानते हैं। उनके अनुसार 'दूसरों के लिये जिंदा रहना प्रकृति की शिक्षा है और यही सृष्टि का चक्र है। आपके अनुसार जगत का एक बड़ा हिस्सा अन्न से पोषित है। अन्न पर्जन्य से उत्पन्न है। कर्म सभी का आधार है। कर्म यज्ञमय है। (पं. दीनदयाल उपाध्याय : 'बौद्धिक वर्ग परीक्षा', दिल्ली संघ शिक्षा वर्ग दिनांक 13.06.1958, संघ कार्यालय झण्डेवाला, दिल्ली, पृष्ठ 29)

डार्विन के विकासवाद की अवधारणा के अनुसार समर्थ ही जीवित रहता है। पंडित जी के अनुसार समर्थ ही जीवित रहता है, यह जीव-शास्त्रीय अवधारणा सामाजिक विकास का आधार नहीं हो सकती है। इस मान्यता ने ही समाज में जंगल के कानून की व्यवस्था उत्पन्न की है। स्पर्धा व संघर्ष से विकास होता है, यह अवधारणा आपकी दृष्टि में गलत है, वे इसे असभ्यता कहते हैं। सभ्यता के विकास का मतलब ही यह है कि कमजोर भी जीवित रह सके। मत्स्य न्याय न रहे, इसीलिये राज्य की स्थापना हुई। समर्थ लोग दुर्बल को समाप्त न कर सकें, इसीलिये हमने समाज व्यवस्था व कानून के शासन की स्थापना की है। (डॉ. जगदीश प्रसाद शर्मा : पं. दीनदयाल उपाध्याय के दार्शनिक और शैक्षिक विचार एवं वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उनकी प्रासंगिकता, लक्ष्मी प्रकाशन, मथुरा, पृष्ठ 178)

पं. दीनदयाल उपाध्याय जी ने पश्चिम के विकास सिद्धान्त को मानवीय विकृति से उत्पन्न विचार घोषित किया है। आपके अनुसार यदि संघर्ष है तो वह प्रकृति का अथवा संस्कृति का द्योतक नहीं वरन, विकृति का द्योतक है। (पं. दीनदयाल उपाध्याय : 'एकात्म मानववाद' एकात्म मानव दर्शन, सुरूचि प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ - 19) पं. जी के अनुसार सृष्टि में जैसे संघर्ष दिखता है वैसे ही सहयोग भी दृष्टिगोचर होता है। हमारी दृष्टि सहयोग भाव पर रहनी चाहिए जैसे वनस्पति और प्राणी दोनों एक-दूसरे की आवश्यकता को पूरा करते हुए ही जीवित रहते हैं। उदाहरण के तौर पर हमें आक्सीजन वनस्पतियों से मिलती है तथा वनस्पतियों को कार्बन-डाय-आक्साइड प्राणी जगत से प्राप्त होती है। इस परस्पर पूरकता के कारण ही संसार चलता है; प्रकृति संतुलित है। (पं. दीनदयाल उपाध्याय : 'एकात्म मानववाद' एकात्म मानव दर्शन, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 19) हेंग्ले ने थीसिस, एंटीथीसिस और संश्लेषण के सिद्धान्तों को पोषित किया है। कार्ल मार्क्स ने इस सिद्धान्त को एक आधार के रूप में इस्तेमाल करते हुए इतिहास और अर्थशास्त्र का विश्लेषण प्रस्तुत किया। डार्विन ने योग्यतम की उत्तरजीविता के सिद्धान्त को जीवन का एकमात्र आधार माना लेकिन पं. दीनदयाल जी ने सभी जीवों में मूलभूत एकात्म देखा है। पंडित जी कहते हैं कि जीवन में विविधता और बहुलता है लेकिन हमने हमेशा उनके पीछे छिपी एकता को खोजने का प्रयास किया है। इसी बात को पंडित जी वनस्पतिशास्त्र के उदाहरण से स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि एक बीज- जड़ों, तनों, शाखाओं, पत्तियों, फूलों और फलों के रूप में अभिव्यक्त होता है। इनके अलग-अलग रूप, रंग और गुण होते हैं, फिर भी हम बीज के माध्यम से उनकी एकता के संबंध को पहचानते हैं। (पं. दीनदयाल उपाध्याय : 'एकात्मक मानववाद', एकात्म मानव दर्शन, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 18-19)

चिकित्सा विज्ञान के बारे में पं. दीनदयाल जी का अपना एक अलग ही दृष्टिकोण है। आपके अनुसार विश्वभर में मनुष्यों के शरीर के अंगों की क्रिया समान होते हुए भी जो औषधि इंग्लैण्ड में कारगार सिद्ध होती है वह भारत में भी उपयोगी (कारगर) सिद्ध होगी यह नहीं कहा जा सकता। रोगों का संबंध जलवायु, आचार-विचार, खान-पान तथा वंश-परम्परा से रहता है। ऊपर से देखने पर रोग एक-सा दिखाई देने पर सब मनुष्यों के लिये एक ही औषधि का नारा लगाने वाले नीम-हकीम हो सकते हैं, चिकित्सक नहीं। आपके द्वारा रोगों के संबंध में दिये गये विचार वैज्ञानिक जगत में नित्य नई खोजों के कारण सिद्ध/सत्य होते नज़र आ रहे हैं। (पं. दीनदयाल उपाध्याय : 'एकात्मक मानववाद', एकात्म मानव दर्शन, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 15)

पं. दीनदयाल उपाध्याय राष्ट्र की सुरक्षा एवं विकास हेतु वैज्ञानिक तकनीक अपनाने के पक्षधर रहे हैं। वे अणुबम बनाने के भी पक्षधर थे। उनका कहना था कि ''विश्व को नष्ट करने के लिये जितने परमाणु बमों की आवश्यकता है, अमेरिका और रूस के पास उससे अधिक हैं। किन्तु अभी तक परमाणु युद्ध नहीं हुआ। अत: कांग्रेस सरकार (तत्कालीन) विश्व-शान्ति का भार भगवान पर छोड़कर परमाणु बम निर्माण कार्य प्रारंभ करें।'' (पं. दीनदयाल उपाध्याय : भारत के अणु बम बनाने से विश्व युद्ध कभी नहीं होगा, पाँचजन्य 23 नवम्बर 1965) ये आपके विचारों का ही परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूप से असर था कि बाद में श्रीमती इंदिरा गाँधी और श्री अटल बिहारी वाजपेयी की सरकारों ने इस दिशा में साहसी निर्णय

लिया। इस प्रकार पंडित जी के विचारों ने भारत को भी परमाणु शक्ति सम्पन्न बनाने में अहंम भूमिका निभाई, ऐसी हमारी मान्यता है।

उपाध्याय जी ने कई उद्बोधनों में भौतिकशास्त्रीय सिद्धान्तों का सहारा लिया है जैसा वे एक उद्बोधन में कहते हैं कि यदि देश की बागडोर उन नेताओं के हाथ में है जो देशज होते हुए भी कुतुबुद्दीन, अलाउद्दीन, मुहम्मद तुगलक, फिरोजशाह, शेरशाह, अकबर और औरंगजेब से किसी प्रकार भिन्न नहीं हैं, तो यही कहना पड़ेगा कि उनका गुरुत्वाकर्षण केन्द्र भारतीय जीवन में नहीं है। (पं. दीनदयाल उपाध्याय : 'राष्ट्र जीवन की दिशा', राष्ट्र धर्म पुस्तक प्रकाशन, लखनऊ, पृष्ठ 160) इसी प्रकार आपने धर्म की विज्ञान परक व्याख्या करते हुए कहा धर्म धारण से है। किसी भी वस्तु, व्यक्ति या प्रकृति का धारण जिन तत्वों से होता है, वही उसका धर्म है, जैसे अग्नि का धर्म ऊष्मता है। (पं. दीनदयाल उपाध्याय : बौद्धिक वर्ग पत्रिका' बौद्धिक वर्ग आंध्रप्रदेश संघ शिक्षा वर्ग, दीन दयाल उपाध्याय शोध संस्थान, नई दिल्ली, 11.05.2017, पृष्ठ 5)

हमारा मानना है कि मशीनीकरण आधारित औद्योगिकीकरण किसी भी राष्ट्र की प्रगति में, उसके विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान देता है। यह न सिर्फ आवश्यक उत्पाद उपलब्ध कराता है अपितु युवा-पीढ़ी को रोजगार उपलब्ध करा कर आगे बढ़ने का अवसर भी प्रदान करता है। जिस देश में औद्योगिकीकरण और उसके उत्पादों की गुणवत्ता अच्छी होगी वह उतनी ही विदेशी मुद्रा एकत्रित कर राष्ट्र को आर्थिक रूप से सुदृढ़ रख सकता है। यन्त्रचालित औद्योगिकीकरण की मर्यादा को स्पष्ट करते हुए पं. उपाध्याय जी एक गणितीय समीकरण प्रस्तुत करते हैं अर्थात् ''प्रत्येक को काम का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया जाए तो सम-वितरण की दिशा सुनिश्चित हो जाती है और हम विकेन्द्रीकरण की ओर बढ़ते हैं।'' औद्योगिकीकरण का यह उद्देश्य मानकर चलना गलत है। इस सिद्धान्त को निम्न गणितीय सूत्र से समझा जा सकता है:-

ज ग क ग य = ई

जहाँ -'ज', जन का परिचायक है।

'क', कर्म की अवस्था एवं व्यवस्था है।

'य', यंत्र की स्थिति को प्रदर्शित करता है, और

'ई', समाज की प्रभावी इच्छा या इच्छित संकल्प को दर्शाता है।

उपर्युक्त सूत्र में 'ई' तथा 'ज' सुनिश्चित है, 'क' एवं 'य' को सुनिश्चित करना है। लेकिन औद्योगिकीकरण लक्ष्य होने पर 'य' सबको नियंत्रित करता है और 'य' के अनुपात में 'ज' की छटनी होती है। इसी के साथ 'य' के अनुपात में 'ई' को यंत्रों के अतिउत्पादन का अनुसरण करना पड़ता है, जो कि सर्वदा अवांछनीय है। इस प्रकार पं. उपाध्याय जी के अनुसार हम कह सकते हैं कि-

1. जन या श्रमिकों (ज) की छटनी कर देने वाली कोई भी अर्थ-व्यवस्था अलोकतांत्रिक है।

2. जनाकांक्षा/जनभावना/जन संकल्पों (ई) को नियंत्रित करने वाली अर्थ-व्यवस्था तानाशाही है।

3. अत: 'ज' तथा 'ई' के नियंत्रण में 'क' तथा 'य' का नियोजन होना चाहिए वही लोकतांत्रिक एवं मानवीय अर्थ-व्यवस्था कही जा सकती है। (पं. दीनदयाल उपाध्याय : 'राष्ट्र जीवन की समस्याएँ' राष्ट्रधर्म प्रकाशन, लखनऊ, 1960, पृष्ठ 44)

भारत में औद्योगिकीकरण की अपनी कई समस्याएँ हैं। पं. उपाध्याय जी के अनुसार जहाँ एक ओर मशीन के श्रद्धालु भक्त हैं, वहीं दूसरी ओर कट्टर दुश्मन भी मौजूद हैं। एक पक्ष मशीन के अभिनवीकरण के अभाव को ही भारत की गरीबी का कारण मानकर चलता है, तो दूसरा पक्ष अभिनवीकरण और यन्त्रीकरण को ही देश के विनाश के लिये जिम्मेदार मानता है। (पं. दीनदयाल उपाध्याय : 'भारतीय अर्थनीति विकास की एक दिशा', राष्ट्रधर्म पुस्तक प्रकाशन, लखनऊ, पृष्ठ 67) उपाध्याय जी मानते हैं कि मशीन पूँजी का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्वरूप है। मानव के श्रम को सुदृढ़ बनाने तथा उसकी उत्पादकता एवं क्षमता को बढ़ाने के लिये ही यंत्र का आविष्कार हुआ है। यन्त्र मानव का सहायक है, मानव का प्रतिस्पर्धी नहीं। (पं. दीनदयाल उपाध्याय : 'राष्ट्रीय जीवन के अनुकूल धर्म रचना'। एकात्म मानव दर्शन, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 66) वास्तव में मशीन न तो मनुष्य की शत्रु है, और न ही मित्र। वह तो एक साधन है तथा उसकी उपादेयता समाज की अनेक शक्तियों की क्रिया-प्रक्रिया पर निर्भर करती है। (पं. दीनदयाल उपाध्याय : 'भारतीय अर्थनीति विकास की एक दिशा', राष्ट्रधर्म पुस्तक प्रकाशन, लखनऊ, पृष्ठ 67) आप इस संबंध में आगे कहते हैं कि यन्त्र की मर्यादाओं का विचार करके ही उसकी उपयुक्तता का निर्धारण करना चाहिए। इस दृष्टि से पश्चिम के उन यन्त्रों को, जो वहाँ की जनसंख्या की कमी के आधार पर बने हैं, बिना विचारे आयात करना भारी भूल होगी। यन्त्र देश-काल-परिस्थिति निरपेक्ष नहीं, सापेक्ष है। विज्ञान की आधुनिकता प्रगति की उपज है, किन्तु प्रतिनिधि नहीं। (पं. दीनदयाल उपाध्याय : 'राष्ट्रीय जीवन के अनुकूल धर्म रचना'। एकात्म मानव दर्शन, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 66) वस्तुतः उपभोगवाद व आर्थिक मानव की कल्पनाओं ने आर्थिक जीवन एवं मानव को विभक्त कर दिया है। श्रम एवं आनंद के बीच एक गहरी खाई पैदा कर दी है। यन्त्र को मनुष्य का सहयोगी बनाने के बजाय, मनुष्य को यन्त्र का पुर्जा बना दिया है। उत्पादन कार्य में से शिल्प व सृजन के सुख का अपहरण कर लिया है। (डॉ. जगदीश प्रसाद शर्मा : पं. दीनदयाल उपाध्याय के दार्शनिक और शैक्षिक विचार एवं वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उनकी प्रासंगिकता, लक्ष्मी प्रकाशन, मथुरा, पृष्ठ 160) इसलिये हमारे वर्तमान प्रधानमंत्री माननीय श्री नरेन्द्र मोदी जी कौशल शिक्षा पर विशेष जोर दे रहे, अवसर प्रदान कर रहे हैं। आपका के स्थान पर भी इसी संकल्पना की ओर संकेत करता है। शिल्प और सृजन को वर्तमान केन्द्र सरकार का प्रोत्साहन निश्चित तौर पर पं. उपाध्याय जी के विचारों से प्रेरित है और भारत की प्रगति के लिये नये मार्ग प्रशस्त करेगा।

पं. उपाध्याय जी के चिंतन की वैज्ञानिकता ही है कि उन्होंने हमेशा आधुनिक तकनीक का स्वागत किया है, किन्तु वे यह भी चाहते हैं कि हमारे साधन भारतीय आवश्यकताओं के अनुरूप हो या अनुरूप होने के लिये परिवर्तनीय हो।

अर्थशास्त्र राष्ट्र के विकास की धुरी है। कोई भी सरकारी या गैर सरकारी नीतियाँ, अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुए ही बनाई जाती है, क्योंकि किसी भी राष्ट्र का आर्थिक रूप से मजबूत होना ही उसके विकसित या विकासशील होने का परिचायक है। पं. उपाध्याय जी के अनुसार भारत को एक ऐसे अर्थशास्त्रीय मॉडल की आवश्यकता है जिसके केन्द्र में मानव को रखा गया हो। पं. उपाध्याय जी ने पंडित नेहरू की आर्थिक नीतियों तथा औद्योगिकीकरण को भारतीय संस्कृति और आध्यात्मिक अनुवांशिकता

के संदर्भों में अमान्य किया है। आपके अनुसार आज की आवश्यकता है कि हम भारत और पश्चिम की सोच तथा आवश्यकताओं के मध्य संतुलन स्थापित करें। (https://intogalactic.com/into/integral humanism (India).)

पंडित उपाध्याय जी का मानना है कि देश की आर्थिक नीतियों पर ही बेरोजगारी निर्भर करती है। लोगों को काम न मिलने के दो ही कारण हैं प्रथम तो काम के लिये जिस प्रकार के व्यक्तियों की आवश्यकता हो, वैसी योग्यता उनमें न हो। दूसरे, काम करने वालों का इतना बाहुल्य हो कि उद्योग-धंधे, व्यापार, सार्वजनिक सेवाएँ आदि उन्हें खपा पाने में असमर्थ हों। अन्य कारण भी हो सकते हैं, किन्तु भारत के संदर्भ में उपर्युक्त दोनों ही कारण स्पष्ट दिखाई देते हैं। (पं. दीनदयाल उपाध्याय: सबको काम ही भारतीय अर्थनीति का एकमेव मूलाधार पाँचजन्य 31 अगस्त, 1953) शायद वर्तमान केन्द्र सरकार ने पं. उपाध्याय जी के विचारों से प्रेरित होकर विशेष जोर दिया है और सकारात्मक निर्णय लिया ताकि देश में रोजगार के अवसर बढ़ सके।

निष्कर्ष रूप से हम कह सकते हैं कि पं. उपाध्याय जी का वैज्ञानिक चिन्तन सकारात्मक, समाज सापेक्ष एवं बहुआयामी हैं। वे सभी प्रकार के वैज्ञानिक, औद्योगिक एवं तकनीकी विकास का केन्द्र मानव को मानते हैं। उनका चिन्तन उदार है वे किसी भी देश की वैज्ञानिक अवधारणाओं और तकनीकी को ग्रहण करने के पक्षधर है यदि वह भारतीयता के अनुकूल है। वे ऐसे किसी भी विकास को मान्य नहीं करते थे जो मानवीय विकास, संवेदनाओं और विश्वबंधुत्व को संरक्षण न देना हो। वे संस्कृति, विज्ञान, धर्म तथा अध्यात्म के समन्वय में ही मानवता का उज्जवल भविष्य देखते हैं।

सम्पर्क : *इन्दौर (म.प्र.)*
मो. 9893022469

एकता गायकवाड़

21वीं सदी की बाल कहानियों में पर्वों का महत्त्व

पुरातन काल से ही कहानियों की दुनिया निराली रही है। यह बालमन के हृदय को स्पर्श करती हुई एक नई दुनिया में लेकर जाती है। जिस प्रकार गीतों का प्रचलन मौखिक रूप से हुआ, ठीक उसी प्रकार बालमन की कहानियों की शुरुआत भी दादी-नानी द्वारा सुनाई जाने वाली कहानियों से हुई। दादा-नानी की कहानियों की पिटारी जब खुलती है, तो उसमें भरे एक से एक नायाब रत्नों की चमक से बालमन मुस्कुरा पड़ते जाते हैं। इन्हीं कहानियों के माध्यम से बच्चों को प्रेरित करने वाले गुण मौजूद होते हैं। सच्ची बाल कहानियाँ मिश्री की तरह होती हैं, जो प्रारंभ से लेकर अंत तक मिठास से भरी रहती हैं। जिसका आनंद पाकर बालक का मन उसमें बँध जाता है।

डॉ. शकुन्तला कालरा के अनुसार 'बाल कहानी का अर्थ है कल्पित या वास्तविक घटना का चित्रण या वर्णन करना जिसका उद्देश्य पाठक का मनोरंजन करते हुए वस्तुस्थिति से परिचित कराना।'

वास्तव में बाल कहानी वही है, जो बालमन के लिए रची गई हो। बाल साहित्यकारों ने भारतीय संस्कृति को जीवित रखने एवं बालकों को प्रभावशाली एवं गौरवशाली पर्वों से जोड़े रखने के लिए महत्त्वपूर्ण प्रयास किए गए हैं। बाल साहित्य में सामाजिक, धार्मिक, राष्ट्रीय एवं पर्यावरण चेतना को जागृत करते हुए बाल पर्वों की कहानियों को माध्यम बनाकर प्रस्तुत किया गया है।

आज बाल साहित्यकारों ने नयी पीढ़ी को संस्कारवान, विचारशील और स्वयं सोचने, विचारने के लिए सक्षम बनाते हैं। आज नैतिक मूल्यों में ह्रास होते हुए तथ्यों पर विचार करने वाले अनेक साहित्यकारों ने अपनी लेखन कला के माध्यम से हमारे भारतीय संस्कृति की विरासत के रूप में विख्यात पर्वों का अध्ययन किया है, जो आज की 21वीं सदी की माँग है।

आज 21वीं सदी के दौर में पर्वों को सिर्फ फैशन व दिखावटी का नजरिया बना रखा है। अगर हम अब पर्वों को मनाने का तरीका देखें तो हम पायेंगे कि जहाँ पहले दीपावली पर सब लोग पूरी भक्ति-भावना के साथ लक्ष्मी जी के स्वागत के लिए महिनों पहले से घर की साफ-सफाई, पूजा-अर्चना के साथ तन्मयता से सब परिवार एक साथ मिलकर कार्य में हाथ बँटाते थे। लोगों का एक-दूसरे के घर जाकर मेल-मिलाप करना आदि। लेकिन अब यह सब रीति-रिवाज समाप्त होते जा रहे हैं और इन्हीं पर्वों के महत्व को समझाने का प्रयास हमारे बाल कहानीकारों ने अपनी लेखनी के द्वारा करने का कार्य किया है। 'होली का रंग' कहानी में राजीव सक्सेना में रंगों के प्रभावों को समझाने का प्रयास किया है।

रंगों से होने वाले दुष्प्रभावों को बयां करती इस कहानी में अपने मित्रों के साथ प्रियांश होली पर्व की तैयारी में लगा हुआ था। वहीं स्कूल में आखिरी दिन जब प्रिंसीपल साहब द्वारा होली पर्व की शुभकामनाएँ देते हुए रंगों के प्रभाव के बारे में बताया और कहा कि – 'बच्चों होली पर हम हानिकारक रंग अबीर, कीचड़ आदि की जगह वनस्पतियों से बने हर्बल रंग ही इस्तेमाल करने का संकल्प लें और किसी पर रंग डालने के लिए जोर-जबरदस्ती न करें।'

इस प्रकार प्रियांश और उसके साथ मित्र होली हर्बल रंगों से खेलकर न सिर्फ एक आदर्श बालक का प्रमाण देते हैं, बल्कि पर्यों के असली महत्व को भी समझने का प्रयास करते हैं।

इसी प्रकार 'देश प्रेम' कथा साहित्य में 'गणतंत्र दिवस' पर बालक अपने मित्र के द्वारा झंडे का अपमान करने पर तिरंगे के प्रति महेश नामक बालक ने देश प्रेम की भावनाओं से ओत-प्रोत तिरंगे में समृद्धि, त्याग, शांति, स्नेह, एकता का प्रतीक बताया और ऐसे विचारों को सुनकर उसका मित्र माफी माँगता है।

अत: कहा जा सकता है कि बच्चे कहानियों के माध्यम से जीवन मूल्यों की प्रेरणा प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से प्राप्त करते हैं। मनोरंजन के साथ-साथ बालमन ज्ञानार्जन के गुणों को भी आत्मसात करते हैं। बाल साहित्यकारों ने 21वीं सदी के बालमन को एक ऐसा संस्कृति मूलक हीरा प्रदान किया है, जिसकी रोशनी से स्वत: ही बालमन आध्यात्मिक भावना, धार्मिक भावना, राष्ट्रीय भावना जैसे अनेक गुणों को अपने भीतर समाहित कर लेगा। भारतीय संस्कृति की जड़ को मजबूत करने वाले पर्यों की विशेषताओं को समझकर एक सभ्य समाज के निर्माण में भी वर्तमान समय का बालक सहयोग करने लगेगा।

सम्पर्क : *इंदौर (म.प्र.)*
मो. 9009960092

डॉ. रवीन्द्र कुमार उपाध्याय

राष्ट्रोत्थान में संघ की भूमिका

भारत एक सनातन राष्ट्र है जिसकी उत्पत्ति सृष्टि के साथ ही आर्यावर्त के रूप में हुई है। समय के साथ युग परिवर्तन हुए और सतयुग से त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग तक आते-आते देवभूमि आर्यावर्त भारत, हिन्दुस्तान और इण्डिया में परिवर्तित होते हुए आज इस रूप में पहुँच गई है। अब आप भारत को आर्यावर्त नहीं कह सकते हैं और दिल्ली को इन्द्रप्रस्थ नहीं कह सकते हैं। यहाँ तक कि भारत की राजधानी दिल्ली राजमार्ग विदेशियों एवं आक्रान्ताओं के नाम पर अकबर रोड, हुमायूँ रोड, औरंगजेब रोड, तुगलक रोड के रूप में माँ भारती को चिढ़ा रहे हैं।

पहले भारत में गुरुकुल एवं आश्रम व्यवस्था के कारण राष्ट्र संगठित, मर्यादित एवं सुरक्षित था किन्तु बाद में इन संस्थाओं एवं व्यवस्थाओं के ढह जाने से भारत खण्डित, विघटित एवं उच्छृंखल होना प्रारम्भ हुआ जिससे समाज में अराजकता फैली और चोरी, व्याभिचारी, बलात्कार जैसी घटनाओं की पुनरावृत्ति बढ़ गयी। इसके लिए हम केवल शक, हूण, तुर्क, मुगल, अंग्रेजों आदि को ही दोषी नहीं ठहरा सकते हैं। इसके मूल में भारतीय समाज की संगठनात्मक कमजोरी भी रही होगी।

भारत का निर्माण लाखों वर्षों के शाश्वत समग्र और एकात्म जीवन दृष्टि पर आधारित चिंतन के फलस्वरूप हुआ है। अत: भारत एक सांस्कृतिक राष्ट्र है और यहाँ समय-समय पर सांस्कृतिक जागरण के द्वारा राजनैतिक परिवर्तन होता रहा है। ऐसे ही राष्ट्रव्यापी सांस्कृतिक जागरण का अग्रदूत है- राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ (आर.एस.एस.)। भारतीय समाज एवं राष्ट्र के नवनिर्माण में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के अवदान को रेखांकित करने से पूर्व हमें स्वामी विवेकानंद की इच्छाओं का अवगाहन करना होगा, जिन्होंने भारत ही नहीं, विदेशों में भी भारतीय संस्कृति के उदार एवं उदात्त तत्वों का प्रचार-प्रसार कर भारत को विश्व शांति का अग्रदूत घोषित किया।

डॉ. केशवराय बलिराम हेडगेवार से पूर्व स्वामी विवेकानंद ने भारतीय सभ्यता-संस्कृति का प्रचार-प्रसार सात समन्दर पार यूरोप, अमेरिका तक में किया किन्तु संगठनात्मक सोच के अभाव में उनके विचारों का प्रभाव समय के साथ कमजोर होता चला गया। यदि विवेकानंद ने अपने विचारों के प्रवाह हेतु एक संगठनात्मक ढाँचा खड़ा किया होता तो शायद डॉ. हेडगेवार को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना की आवश्यकता ही नहीं पड़ती।

स्वामी विवेकानंद के हिन्दुत्व में ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' का विचार समाहित था। उन्होंने लाहौर में

कहा था- ''आप तभी हिन्दू हैं जब अन्य किसी की पीड़ा से आपके हृदय में वैसी ही दु:ख की लहर दौड़ जाती है, जैसी कि अपने पुत्र को तकलीफ में देखकर होती है।'' (स्वामी विवेकानंद समग्र, खण्ड-3, कोलम्बों से अल्मोड़ा तक के सम्भाषण)

स्वामी विवेकानंद की हार्दिक इच्छा थी कि भारत में एक राष्ट्रव्यापी संगठन बनाया जाए। एक बार उन्होंने कहा था- ''मध्य भारत में एक नगर बनाने की वृहद योजना है, जहाँ आप अपने विचारों का स्वतन्त्रतापूर्वक पालन कर सकें, फिर एक छोटा-सा उत्प्रेरण सभी को उत्प्रेरित कर देगा। इसी दौरान एक केन्द्रीय समिति का गठन करें। जिसकी शाखाएँ समस्त भारत में फैलें।''

स्वामी विवेकानंद जैसे महापुरुषों की इच्छाओं के साथ-साथ मध्ययुगीन आक्रान्ताओं के अत्याचार, अंग्रेजी शासन एवं भारतीयों के जीवन-चरित्र आगे आ रही राष्ट्रीयता-सामाजिकता की गिरावट को दूर करने के लिए ही डॉ. हेडगेवार ने भारत में राष्ट्रीय स्वयं सेवक (संघ) की स्थापना का विचार किया।

आलोचक कहते हैं कि भारत को अंग्रेजों से स्वतंत्र कराने के बाद ही डॉ. हेडगेवार को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (संघ) की स्थापना करके भारतीय समाज को संगठित कर राष्ट्रोत्थान के मार्ग पर आगे बढ़ना था। मेरा विनम्र मत है कि भारत को अंग्रेजों की गुलामी से मुक्त कराये बिना डॉ. केशवराय बलिराम हेडगेवार द्वारा 1925 ई. में संघ की स्थापना के मूल में निम्नांकित कारण प्रमुख थे-देशभक्ति और समाज के बीच सम्बन्धों का अभाव, सामाजिक समस्याओं के समाधान के प्रति पलायन भाव, परतन्त्रता की मानसिकता आदि।

डॉ. हेडगेवार की दृष्टि में इन समस्याओं का समाधान भारत की स्वतन्त्रता से पूर्व अति आवश्यक था। यही सोचकर हेडगेवार ने संघ की शाखाओं के माध्यम से स्वयंसेवक तैयार किये और उनके माध्यम से भारतीय समाज को संगठित करना प्रारम्भ किया। उनका मानना था कि स्वयंसेवकों का समर्पित जीवन ही राष्ट्र की समस्याओं के समाधान की औषधि होगी।

संघ की स्थापना के समय ही डॉ. हेडगेवार का एकमेव उद्देश्य था- हिन्दू अर्थात् भारतीय समाज को उसकी क्षमता का अनुभव कराया जाए। साथ ही हिन्दुओं अर्थात् भारतीयों में आत्म सम्मान की भावना का विकास, उच्च नैतिकता, राष्ट्रीयता, चरित्र निर्माण, सेवा परमो धर्म: आदि का विकास किया जाए।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर बार-बार साम्प्रदायिकता का आरोप लगाने वाले कुतर्की अक्सर यह प्रश्न करते हैं कि संघ ने विगत 90 वर्षों में देश के लिए क्या किया? इसके उत्तर में मेरा विनम्र निवेदन इतना-सा है कि यदि वे संघ की उत्पत्ति से लेकर आज दिन तक निष्पक्ष दृष्टि से संघ के क्रिया कलापों का अवलोकन करेंगे तो उन्हें ज्ञात होगा कि स्वतन्त्रता से पूर्व भी डॉ. हेडगेवार सहित असंख्य संघ कार्यकर्ताओं ने भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लिया।

भारत के विभाजन और पाकिस्तान के निर्माण पर भारत में शरणार्थियों की शरण तथा उनके आश्रय की व्यवस्था, भारत पर पड़ोसी देशों पाकिस्तान व चीन के आक्रमण, प्राकृतिक आपदा, भूकम्प, बाढ़, वर्षा, अकाल आदि में पीड़ितों की मदद, चरखी दादरी हवाई जहाज दुर्घटना जैसी मानवजनित दुर्घटनाओं में घायलों की भेदभाव रहित सहायता तथा राष्ट्र के समक्ष संकट के समय आदि सभी विकट परिस्थितियों में संघ के स्वयंसेवक सहायता को सदैव तत्पर मिलते हैं।

सेक्युलर अर्थात् छद्म धर्मनिरपेक्षतावादी एवं वामपंथी अक्सर एक ही प्रलाप करते हैं कि संघ के संस्थापकों एवं स्वयंसेवकों ने भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में भाग नहीं लिया। इस विधवा प्रलाप पर मेरा इतना ही निवेदन है कि इतिहास गवाह है- डॉ. हेडगेवार सहित संघ के अनेक स्वयंसेवकों ने स्थान-स्थान पर व्यक्तिगत रूप से भारत छोड़ो आन्दोलन सहित भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लिया और जेल भी गये।

डॉ. हेडगेवार ने भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन के अन्तर्गत 1921 व 1930 में हुए सत्याग्रहों में भाग लिया और जेल गये उन्होंने मुम्बई के स्थान पर कोलकाता से चिकित्सा शिक्षा एम.बी.बी.एस. की डिग्री प्राप्त की और क्रान्तिकारियों की शीर्षस्थ संस्था ''अनुशीलन समिति'' के सदस्य भी बने। केशव ने डॉक्टरी की डिग्री प्राप्त करने के पश्चात अपने परिवार व विवाह की चिंता छोड़ अपना जीवन संघ के माध्यम से भारतीय समाज को संगठित करने में व्यतीत कर दिया।

उन्होंने युवा अवस्था में अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की सदस्यता ली और ब्रिटिश शासन के विरुद्ध भड़काऊ भाषण देने के आरोप में मुकदम भी झेले। केशव को 19 अगस्त 1921 को अंग्रेजी शासन के विरुद्ध देशद्रोह के आरोप में एक वर्ष की कठिन कारावास की सजा सुनाई गयी। 19 अगस्त 1921 से 11 जुलाई 1922 तक केशव जेल में रहे। 12 जुलाई 1922 को जेल से रिहा होने पर केशव का भव्य स्वागत हुआ जिसमें पं. मोतीलाल नेहरू, राजगोपालाचारी, डॉ. अंसारी, विट्ठल भाई पटेल, हकीम अजमल खान जैसे कांग्रेसी नेता भी सम्मिलित हुए।

1920 में कांग्रेस के नागपुर में होने वाले राष्ट्रीय अधिवेशन की व्यवस्थाओं का उत्तरदायित्व डॉ. हर्डीकर एवं डॉ. हेडगेवार को दिया गया था जिसके लिए हेडगेवार ने 1200 स्वयंसेवकों को कांग्रेस की सदस्यता भी दिलाई थी। उस समय हेडगेवार कांग्रेस की नागपुर शहर इकाई के संयुक्त सचिव भी थे। उसी नागपुर अधिवेशन में हेडगेवार ने भारत को पूर्ण स्वतन्त्र कर भारतीय गणतन्त्र की स्थापना और विश्व को पूँजीवाद के चंगुल से मुक्त करने का प्रस्ताव रखना चाहा किन्तु कांग्रेस ने इसे अस्वीकार कर दिया।

नौ साल बाद कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में हेडगेवार का उक्त प्रस्ताव कांग्रेस द्वारा स्वीकार किया गया। डॉ. हेडगेवार ने 26 जनवरी 1930 को कांग्रेस का अभिनंदन करने की घोषणा की।

लोकमान्य तिलक के निधनोपरान्त कांग्रेस का नेतृत्व महात्मा गाँधी के हाथों में आ गया। महात्मा गाँधी ने मुस्लिमों का समर्थन स्वतन्त्रता संग्राम में प्राप्त करने के उद्देश्य से खिलाफत आन्दोलन का समर्थन किया। किन्तु केरल के मलाबार में मोपलाओं ने अंग्रेजों का विरोध करने के स्थान पर हिन्दुओं का कत्ले आम कर दिया जिससे व्यथित हो डॉ. हेडगेवार ने गाँधी जी से चर्चा की। गाँधी ने मोपलाओं द्वारा हिन्दुओं के नरसंहार पर कोई टिप्पणी नहीं की।

संघ के संस्थापक डॉ. केशवराय बलिराम हेडगेवार को साम्प्रदायिक कहने वाले भूल जाते हैं कि केशव बचपन से ही घोर राष्ट्रवादी थी। केशव जब 9-10 वर्ष की उम्र में कक्षा तीन में अध्ययनरत थे, तब विद्यालय में मनाये जा रहे इंग्लैंड की महारानी के राज्याभिषेक महोत्सव की मिठाई को केशव ने कचरे के डिब्बे में फेंक दिया था।

1907 में जब ब्रिटिश सरकार ने भारत में ''वन्दे मातरम्'' के सार्वजनिक उद्घोष कर प्रतिबन्ध

लगाया तब नील सिटी स्कूल में निरीक्षण पर आये अंग्रेज इंस्पेक्टर का स्वागत कक्षा दस में पढ़ रहे केशव ने योजनाबद्ध तरीके से ''वंदे मातरम'' के उद्घोष से कराया। परिणामस्वरूप केशव सहित कक्षा दस के सभी विद्यार्थियों को स्कूल से निकाल दिया गया। बाद में केशव को छोड़कर अन्य विद्यार्थियों ने इसके लिए क्षमा याचना की।

भारत के पुनर्निर्माण में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के महत्व को नकारा नहीं जा सकता है। मुगलों एवं अंग्रेजों द्वारा नष्ट-भ्रष्ट कर दिये गये भारत को यदि किसी ने पुनः नवनिर्माण के पथ पर अग्रसर किया है और भारतीय समाज को जाग्रत किया है तो वह केवल और केवलराष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ है।

स्वतन्त्रता उपरान्त भारत के पुनः राष्ट्र निर्माण व समाज के जनजागरण में संघ के अवदान-योगदान को देखना है तो संघ की स्थापना से लेकर वर्तमान तक संघ के समस्त क्रियाकलापों एवं संगठनात्मक कार्यों का सूक्ष्म व गहन अवलोकन करना पड़ेगा।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ केवल सांगठनिक क्रिया कलाप मात्र होकर भारत को परम वैभव तक ले जाने की साधना है जो 1925 ई. में विजयादशमी के दिन नागपुर के महाल मुहल्ले में मोहिते के बाड़े में कुछ बच्चों के साथ शुरू हुई। जहाँ गौरवमयी भारत के पतन की वेदना अनुभव करते हुए भारत के पुनरुत्थान का गहन विचार और व्यायाम साथ-साथ चलते थे। एक छोटे से खेल मैदान में उठने वाले राष्ट्रोत्थान और समाजोत्थान के ये विचार देखते ही देखते देश, दुनिया और ब्रह्माण्ड में फैल जाते हैं। ये लोग अपने पुरखों व परम्पराओं को आगे कर निष्काम भाव से कर्म करते हैं। हतबल हिन्दू (भारतीय) समाज की इस प्रथम उपचार शाला का नाम करण 17 अप्रैल 1926 को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ किया गया।

महात्मा गाँधी के आह्वान पर सविनय अवज्ञा आन्दोलन के सत्याग्रह में डॉ. हेडगेवार ने संघ के सरसंघचालक के पद से त्यागपत्र दिया और 1930 के सत्याग्रह में भाग लिया। नौ माह का कारावास भी भुगता। इसके बाद डॉ. हेडगेवार ने जंगल सत्याग्रह में भी भाग लिया।

संघ की स्थापना के समय संघ का अर्थ था- शाखा क्षेत्र में कार्य करना। बाद में डॉ. हेडगेवार द्वारा 1936 ई. में विजयादशमी के दिन राष्ट्र सेविका समिति का गठन किया गया जो शाखाओं से बाहर संघ का विस्तार था। स्वतन्त्रता से पूर्व संघ का लक्ष्य भी ब्रिटिश शासन से भारत को मुक्ति दिलाना ही था, किन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् संघ का विचार बना कि उसके स्वयंसेवकों के साथ-साथ समस्त भारतवासी मातृभूमि के समग्र विकास के लिए कार्य करें।

संघ एक संयुक्त परिवार की तरह है जिसका मुखिया सरसंघचालक होता है, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति दूसरे के कल्याण की सोचता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने अनुभवों से संघ को नई दिशा और दशा देने के लिए स्वतन्त्र है। इसीलिए संघ में समयानुसार परिवर्तन-सुधार स्वीकार किये जाते हैं।

राष्ट्र सर्वोपरि है संघ के लिए। राष्ट्रीय पुनर्निर्माण अथवा राष्ट्र निर्माण के लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु एक आत्मनिर्भर, सशक्त, गतिशील व स्वस्थ समाज का निर्माण करना संघ का घोषित लक्ष्य है। संघ का स्पष्ट मानना है कि स्वस्थ भारतीय समाज के लिए सांस्कृतिक एकता एक अपरिहार्य तत्व है।

आदि काल से ही भारतीय समाज स्वायत्त समाज के रूप में रहा है और सत्ता तथा शासन पर बहुत

अधिक आश्रित नहीं रहा है। इसीलिए व्यक्ति निर्माण के साथ-साथ स्वायत्त समाज को सुदृढ़ बनाने का विचार संघ की मूल योजना में सम्मिलित रहा है। संघ की दृष्टि में एक व्यक्ति और समाज के मध्य सम्बन्ध शरीर के एक हिस्से और सम्पूर्ण शरीर के मध्य सम्बन्ध की तरह है। अत: व्यक्ति और समाज में पारस्परिकता, साझापन और अन्तर-निर्भरता होना ही चाहिए।

डॉ. केशव ने संघ को आत्मनिर्भर एवं स्वावलम्बी बनाने हेतु गुरु दक्षिणा की परम्परा प्रारम्भ की जिसमें स्वयंसेवक गुरु पूर्णिमा पर भगवा ध्वज के सम्मुख गुप्त रूप से लिफाफे में अपनी सामर्थ्य अनुसार गुरु दक्षिणा (राशि) दान करता है जिसका पता संघ पदाधिकारियों को भी नहीं चलता है। इससे स्वयंसेवकों में भी गुरु दक्षिणा के नाम पर हीन भावना या अहंकार उत्पन्न नहीं होता है।

डॉ. हेडगेवार ने गुरु दक्षिणा का अर्थदान लेने के रूप में स्वयं को, किसी देवी-देवता को गुरु नहीं मान कर त्याग, तपस्या, समर्पण, शौर्य व पराक्रम के प्रतीक भगवा ध्वज को ही संघ का गुरु बनाया ताकि बाद में संघ में गुरु परम्परा के नाम पर कोई संघर्ष व द्वन्द्व नहीं हो।

उन्होंने अपनी मृत्यु के एक दिवस पूर्व 20 जून 1940 को माधव सदाशिव गोलवलकर उपाख्य गुरुजी को कहा- ''अब आपको ही संघ कार्य करना है।'' श्री गुरुजी ने 33 वर्षों तक सरसंघचालक का दायित्व सँभाला और राष्ट्र-समाज के विविध क्षेत्रों में संघ के आनुषंगिक संगठन खड़े कर संघ का अप्रत्यक्ष रूप से प्रसार किया।

संघ की स्थापना से ही संघ के दो महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त घोषित किये गये हैं-1. व्यक्ति निर्माण और 2. राष्ट्र निर्माण और दोनों ही एक-दूसरे के पूरक हैं। राष्ट्र निर्माण से पूर्व व्यक्ति निर्माण आवश्यक है और व्यक्ति निर्माण होते ही राष्ट्र निर्माण को कोई रोक नहीं सकता है।

शाखाओं में प्रतिदिन व्यायाम के साथ-साथ बालकों के मन-मस्तिष्क में यह बीजारोपण किया जाता है कि ''भारत मेरी मातृभूमि है और इसका कण-कण मेरे लिए पवित्र है। भारतीय समाज और मेरे मध्य एक अटूट-अनूठा और अद्वितीय सम्बन्ध है।'' स्वयंसेवक भारतीय संस्कृति और राष्ट्रीयता का शाखाओं में निरन्तर प्रबोधन करके अशिक्षित ही नहीं, पढ़े-लिखे भारतीय विद्वानों के जनमानस में भी मानसिक-बौद्धिक परिवर्तन लाकर उन्हें राष्ट्र, मातृभूमि, समाज एवं संस्कृति के प्रति समर्पित नागरिक बनाने का भागीरथी प्रयास कर रहे हैं। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ भारत में बहने वाली राष्ट्रीयता की भागीरथी है, जिसमें अवगाहन करने से व्यक्ति में राष्ट्र और संस्कृति का भाव बोध जाग्रत होता है।

संघ का आधार स्तम्भ है भारतवर्ष, भारतीय समाज, भारतीय संस्कृति और पुरखों के साथ एकात्म भाव। संघ भारतीय संस्कृति और राष्ट्रप्रेम का वट वृक्ष है। संघ एक राष्ट्रीय चेतना है जो, ''कृण्वन्तो विश्वम् आर्यम्...'' और ''सर्वे भवन्तु सुखिन: ...'' का उद्घोष करता है। संघ वर्गभेद और राष्ट्रीय-सामाजिक सीमाओं से परे समग्र विश्व का कल्याण चाहता है। इसीलिए संघ का स्वयंसेवक भारतीय समाज को संगठित कर भारतवर्ष को परम वैभव तक ले जाना चाहता है। संघ अपनी दैनिक प्रार्थना का प्रारम्भ ही मातृभूमि के प्रति अपनी काया के समर्पण से करता है ताकि व्यक्ति समाज-राष्ट्र के उत्थान व मातृभूमि की रक्षार्थ अपना सर्वस्व समर्पित कर दें-

नमस्ते सदा वत्सले मातृभूमे, त्वया हिन्दभूमे, सुखं वर्धितोहम्।

महामंगले पुण्यभूमेत्वदर्थे, पतत्वेषकायो। नमस्ते नमस्ते।।

एक सफल व्यक्ति वही होता है जो चुनौतियों को अवसर में परिवर्तित कर उपलब्धियाँ अर्जित करे। संघ के स्वयंसेवक राजदूत और फील्डमार्शल की तरह होते हैं जो अपने परिश्रम, चातुर्य, बुद्धिमता और बलिदान से समाज-राष्ट्र में वांछित परिवर्तन लाने की क्षमता रखता है। एक सुगठित, अनुशासित और गुणवत्तामूलक प्रगतिशील भारतीय समाज ही संघ का आदर्श है।

संघ व्यक्तित्व निर्माण के लिए सेवाभावी और संस्कारित स्वयंसेवक तैयार करता है जो शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वावलम्बन व संस्कारों से सेवा विभाग के माध्यम से समाज में समरसता का निर्माण कर समाज के प्रत्येक वर्ग-घटक को राष्ट्र की मुख्य धारा से जोड़कर सशक्त एवं स्वावलम्बी समाज का निर्माण करते हैं। यही कारण है कि आज समाज में छुआछूत एवं सामाजिक कुरीतियाँ आदि समाप्त हो रही हैं।

स्वयंसेवक समाज में तीन प्रकार की सेवा को प्राथमिकता देता है- 1. अभावग्रस्त व्यक्ति का अभाव दूर करने का प्रयास करना, 2. वंचित, दीन-हीन एवं निर्बल व्यक्ति को उसके पैरों पर खड़ा करना और 3. आज जिसे सेवा की आवश्यकता है, उसे कल दूसरे की सेवा करने योग्य बनाना। संघ सामाजिक जीवन में प्रत्यक्ष कुछ नहीं करेगा, बल्कि यह स्वयंसेवकों की जिम्मेदारी है कि वे सभी कार्यों को कुशलता से करें और उनकी गतिविधियों में संघ के दर्शन-कार्य की स्पष्ट छाप दिखाई दे। इस प्रकार संघ व्यक्तित्व निर्माण से राष्ट्र निर्माण और समाज निर्माण का कार्य करता है।

संघ का स्वयंसेवक दूसरों को बदलने से पूर्व स्वयं को बदलकर अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत करता है। वह यश व प्रतिष्ठा की कामना में कोई कार्य नहीं करता अपितु मातृभूमि के प्रति अपने कर्त्तव्यों को ईश्वरीय कार्य समझ कर नि:स्वार्थ भाव से राष्ट्र व समाज की सेवा करता है। संघ ''सुशीलं जगद्येन नम्रम-भवेद'' की प्रार्थना करते हुए चाहता है कि उसके स्वयंसेवक विश्व वंदनीय आदर्श चरित्रों को अपने व्यक्तित्व में ढाले और अपने जीवन में शुचिता नैतिकता व आदर्शों को बनाए रखे। संघ ने भारतवर्ष के विभिन्न भागों में अपने प्रचारक भेजकर सिद्ध कर दिया है कि वह क्षेत्रवाद, भाषावाद, वर्गवाद आदि में पूर्वाग्रहों से मुक्त एवं निरपेक्ष है।

राष्ट्र-समाज के लिए जीवन समर्पित करने वाले ऋषितुल्य प्रचारक व गृहस्थ स्वयंसेवक ही संघ के आधार स्तम्भ हैं। जिनके कारण भारत के हर क्षेत्र-दिशा में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के विचार प्रस्फुटित एवं पल्लवित हो रहे हैं और भारत विश्व गुरु बनने जा रहा है।

देश पर संकट, प्राकृतिक आपदाओं, बाढ़, भूकम्प, तूफान, मानव निर्मित दुर्घटनाओं आदि में संघ के स्वयंसेवक सबसे आगे मिलते हैं। 1978 ई. में आन्ध्रप्रदेश में आये समुद्री तूफान की विपदा में संघ के स्वयंसेवकों द्वारा की गयी सेवा को देख तत्कालीन सर्वोदयी नेता और संन्यासी प्रभाकर राव ने कहा था कि आर.एस.एस. का मतलब है READYFOR SELFLESS SERVICE अर्थात् नि:स्वार्थ सेवा के लिए सदैव तत्पर रहने वालें। बरसों पहले हरियाणा के चरखी दादरी में हुई वायुयान दुर्घटना में घायल मुस्लिमों की संघ के स्वयंसेवकों द्वारा की गई सेवा-सहायता यह प्रमाणित करती है कि संघ के सेवा कार्य भेदभाव पर आधारित नहीं होते हैं।

विभिन्न आन्दोलनों के मध्य भी संघ अपने स्वयंसेवकों को सदैव अनुशासित एवं समाज को कष्ट

या नुकसान नहीं पहुँचाने की चेतावनी देता है। यही कारण है कि राम मन्दिर आन्दोलन हेतु 04 अप्रैल 1991 को दिल्ली में एकत्रित 25 लाख लोगों का समूह बिना किसी हुड़दंग, लूटपाट व अशांति के चुपचाप घर लौट जाता है। इसी प्रकार 06 दिसम्बर 1992 को अयोध्या में आये लगभग तीन लाख लोग बाबरी मस्जिद को छोड़कर किसी अन्य मस्जिद व मुस्लिम के घर-दुकान को छूते भी नहीं हैं और शांतिपूर्ण तरीके से घर लौट जाते हैं। यही संघ का अनुशासन और आपसी सद्भाव है।

वैधानिक षड्यन्त्रों से भारतीय समाज से पृथक कर दिये पूर्वोत्तर भारत में भी संघ ने अपना प्रभाव दिखाया जिसके परिणामस्वरूप नागालैंड की रानी गाइदिन्ल्यु ने सार्वजनिक रूप से स्वयं और उनके समाज को हिन्दू घोषित किया।

सनातन संस्कृति और भारतीयता की चर्चा करना भूतजीवी बनना नहीं है, अपितु अपने गौरवमयी इतिहास का स्मरण कर वर्तमान को सुधारते हुए अपना भविष्य सुखद और स्वर्णिम बनाना है। संघ पर पुरातनपंथी होने एवं भारत को बैलगाड़ी युग में ले जाने का आरोप लगाने वाले भूल जाते हैं कि जैन संत तरुण सागर जी के आग्रह पर ही संघ ने स्वयंसेवकों की पूर्ण गणवेश से चमड़े का बेल्ट हटाकर उसके स्थान पर कपड़े का बेल्ट सम्मिलित किया है। संघ ने हिन्दू की परिभाषा में भारत में रह रहे सभी नागरिकों को सम्मिलित किया है जो उसकी प्रगतिवादी सोच व उदार दृष्टि का परिचायक है। बालासाहेब देवरस के अनुसार ''जो स्वयं को हिन्दू कहे, वही हिन्दू है।'' अर्थात् हिन्दू होने के लिए किसी पहनावे, वेशभूषा, स्वरूप, छाप-तिलक, खान-पान आदि की बाध्यता नहीं है।

संघ के अनुसार ''हिन्दू'' शब्द को भौगोलिक दृष्टि की अपेक्षा सांस्कृतिक स्वरूप में व्याख्यायित किया जाना चाहिए। हिन्दुत्व विशेष जीवन-मूल्यों को लेकर जीने वाली एक जीवन शैली है, जिसमें सभी व्यक्ति परस्परावलम्बन के आधार पर साहचर्य और समन्वय के द्वारा जीवन जीते हैं।

भारतीय मूल के सभी पन्थों, सम्प्रदायों मत और मतान्तरों का सम्मान करना संघ की विशेषता है। इसीलिए संघ हिन्दू धर्म को एक जीवन पद्धति और जीवन दर्शन मानकर भारतीय समाज में सामंजस्य और समरसता स्थापित करने पर बल देता है। संघ विपरीत विचारों को भी सम्मानपूर्वक सुनता है तथा अपने कार्यकर्ताओं को स्वतन्त्रतापूर्वक सोचने का अवसर भी देता है।

महात्मा गाँधी एवं उनके विचारों का संघ कभी भी विरोधी नहीं रहा है। महात्मा गाँधी ने साधन की पवित्रता, स्वधर्म, स्वराज, स्वदेशी, शुचिता, भारतीय चिन्तन, आध्यात्मिकता मातृभाषा, चरित्र निर्माण, गौरक्षा आदि का समर्थन किया था और संघ आज भी इन्हीं मुद्दों-विषयों पर कार्य करके भारत को परम वैभव पर पहुँचाना चाहता है।

भारतीय समाज के विभिन्न क्षेत्रों में सभी प्रकार के नेतृत्व और घटकों को साथ लेकर सभी का विकास करने की आकांक्षा संघ की है। संघ किसी भी जाति, बिरादरी, पंथ, सम्प्रदाय, मज़हब, मतमतान्तर, वर्ग, भाषा आदि से परहेज नहीं करता है। यहाँ तक कि संघ अल्पसंख्यकवाद व बहुसंख्यकवाद में विश्वास न कर इन्हें राजनीतिज्ञों द्वारा गढ़े गये विभेदकारी-विघटनकारी शब्द मात्र मानता है। संघ का एकमेव लक्ष्य है समन्वय द्वारा भारतीय समाज का विकास कर राष्ट्र को परम वैभव पर पहुँचाना। इसीलिए आज संघ अनजान व्यक्तियों और समाजों से मित्रता की राह पर अग्रसर हो रहा है।

संघ-कार्यों के फैलाव से राष्ट्र को यह फायदा हुआ है कि कश्मीर से कन्याकुमारी और गोवा से गोहाटी तक देशवासियों में एक राष्ट्र का भाव जाग्रत हुआ है और आम आदमी को अपने राष्ट्रीय-सामाजिक कर्त्तव्यों का बोध हुआ है। आज संघ के शांत और अहिंसक वैचारिक आन्दोलन का ही परिणाम है कि भारत में राष्ट्रवाद बनाम छद्म धर्मनिरपेक्षता का वैचारिक ध्रुवीकरण होने लगा है जिससे देश में राष्ट्रवादी ताकतें मजबूत हुई हैं और राष्ट्र विरोधी विघटनकारी तत्वों की पहचान सामने आने लगी है।

भारत के पुनर्निर्माण एवं भारतीय समाज के पुनर्जागरण में संघ की भूमिका इसी तथ्य से रेखांकित हो जाती है कि स्वाधीनता प्राप्ति से पूर्व संघ के आद्य सरसंघचालक डॉ. हेडगेवार सहित अनेक स्वयं सेवकों ने भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन में भाग लिया, जेल की सजा भुगती और अंग्रेजों के अमानवीय अत्याचार सहन किये। स्वतन्त्रता के पश्चात् 1947 में पाकिस्तानी कबीलाई आक्रमण, 1965 व 1971 में पाकिस्तान के आक्रमण, 1962 में चीनी आक्रमण के समय संघ के स्वयंसेवक राष्ट्र के साथ खड़े रहे जिससे प्रभावित हो तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने संघ के स्वयंसेवकों को गणतन्त्र दिवस समारोह 1963 की परेड में ससम्मान आमन्त्रित किया। 1965 में युद्ध के समय भारत के प्रधानमंत्री ने 05 सितम्बर 1965 को संघ के सरसंघचालक को राष्ट्रीय सुरक्षा पर होने वाली बैठक में आमंत्रित किया। संघ राष्ट्रीय सामाजिक एवं सांस्कृतिक जनजागरण में भाग लेता है किन्तु राजनीति से सदैव दूर रहता है।

मध्ययुगीन आक्रान्ताओं के दिल दहला देने वाले अत्याचारों के उपरान्त भी उनके वंशजों को भारतीय समाज ने अंगीकार-स्वीकार कर अपनी उदारता-उदात्तता से सर्वसमावेशिता के मूल्यों का पालन किया है। संघ ने सर्वसमावेशिता की प्रवृत्ति को ध्यान में रखकर ही भारतीय समाज के जीवन्त एकीकरण पर बल दिया है। इसके लिए संघ ने विविध आनुषंगिक संगठन खड़े किये हैं जो साम्यवाद प्रेरित वामपंथी वर्ग संघर्ष से भिन्न सामाजिक समरसता एवं सद्भाव के सिद्धान्त पर कार्य करते हैं। इनके बारे में महात्मा गाँधी ने कहा था ...संघ और संघ प्रेरित जन संगठनों ने हमारी सभ्यता की प्रतिभा को अक्षुण्ण बनाए रखा है।'' (पांचजन्य, नई दिल्ली, 11 दिसम्बर 2016, पृ. 105, विनय सहस्रबुद्धे,'' एकात्मता का भाव जगाते संगठन)

विविध संगठनों के गठन में संघ का विचार है कि स्नेह की ऊष्मा और बन्धुत्व की भावना से किसी भी व्यक्ति के दृष्टिकोण, व्यवहार और आचरण में वांछित परिवर्तन ला सकता है। संगठन में किसी भी व्यक्ति को स्वीकार किया जाना चाहिए क्योंकि वह मूलभूत रूप से एक ग्रहणशील दृष्टिकोण वाला है। इसीलिए संघ सभी राष्ट्रवादी सकारात्मक सोच वाले नागरिकों का एकीकृत मंच बन गया है। संघ की स्पष्ट सोच है कि किसी भी संगठन में सभी व्यक्ति महत्त्वपूर्ण हैं किन्तु अपरिहार्य कोई भी नहीं। 1940 में संघ के द्वितीय सरसंघचालक गुरु जी ने डॉ. हेडगेवार की प्रेरणा से भारतीय समाज में संघ के विस्तार की दृष्टि ने विविध आनुषंगिक संगठन गठित किये जिनकी संख्या आज 52 से अधिक है।

विविध संगठनों की स्थापना के पीछे गुरु गोलवलकर का स्पष्ट विचार था कि जीवन-समाज के प्रत्येक क्षेत्र में एक आदर्श स्थापित कर उस विशिष्ट क्षेत्र को राष्ट्र निर्माण और समाज जनजागरण के पथ पर अग्रसर करना ताकि एक सशक्त और समर्थ भारत का निर्माण हो सके। विविध संगठनों से संघ का

सम्बन्ध केवल उस संगठन विशेष में कार्य कर रहे स्वयंसेवकों से होता है, न कि संगठन से। संगठन विशेष में कार्य कर रहे संघ के स्वयंसेवक उस संगठन क्षेत्र में संघ संस्कृति अर्थात् स्वयंसेवकत्व के लिए प्रतिबद्ध होते हैं और अपनी संघ शैली तथा कार्यशैली से राष्ट्रीयता, संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते हैं। विविध संगठनों और संघ के मध्य सहयोग, समन्वय और सम्बलन हेतु संघ द्वारा समय-समय पर समन्वय बैठकों का आयोजन किया जाता है। कुछ प्रमुख विविध संगठनों का अति संक्षिप्त परिचय-

भारतीय आधारभूत संकल्पनाओं के माध्यम से विद्यार्थियों को श्रेष्ठ एवं उत्तरदायी नागरिक बनाने के उद्देश्य से संघ ने विद्या भारती के विद्यालयों की स्थापना की है जहाँ न्यूनतम शुल्क पर मातृ भाषा में शिक्षा प्रदान की जाती है। विदेशी ताकतों, देशद्रोही विचारकों, वामपंथी बुद्धिजीवियों द्वारा भारतीय भाषाओं की जननी संस्कृत को मृतप्राय: घोषित कर दिया है जबकि अमेरिका, ब्रिटेन, रूस आदि देशों में संस्कृत ग्रन्थों में वर्णित घटनाओं की प्रामाणिकता के लिए कई शोध कार्य चल रहे हैं। संघ से सम्बद्ध ''संस्कृत भारती'' द्वारा संस्कृत भाषा के प्रचार-प्रसार हेतु कार्य किया जा रहा है।

अखिल भारतीय साहित्य परिषद्, प्रज्ञा परिषद् अधिवक्ता परिषद्, भारत विकास परिषद आदि विभिन्न परिषदों के माध्यम से विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों, तकनीकी संस्थानों में संगोष्ठियों, सम्मेलन, परिचर्चाओं, अधिवेशनों आदि का आयोजन कर भारतीयता का प्रसार किया जाता है। गुरु जी की ही प्रेरणा से दीनदयाल उपाध्याय एवं डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने भारतीय जनसंघ की स्थापना की जा बाद में भारतीय जनता पार्टी बन गई। श्रमिकों के कल्याणार्थ भारतीय मजदूर संघ, विद्यार्थियों-युवाओं हेतु अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद्, हिन्दू हितार्थ विश्व हिन्दू परिषद् बजरंगदल, प्रौढ़ों हेतु कुटुम्ब प्रबोधन, भारतीय परम्पराओं संस्कारों, वेशभूषा, शिष्टाचार आदि का प्रदर्शन-प्रतिनिधि गाँवों में होते हैं। संघ स्वयंसेवक इसी ग्रामीण भारत की मौन साधना सालों से करते आ रहे हैं। गौ-चैतना जाग्रत करने के लिए विश्वमंगल गो ग्राम यात्रा।

96 वर्षों से अधिक राष्ट्र आराधना एवं समाज साधना के उपरान्त भी संघ के सम्मुख निम्न चुनौतियाँ प्रमुख हैं- 1. भारतीय जीवन मूल्यों के अनुकूल राष्ट्र व समाज की पुनर्रचना के सूत्र खोजना। 2. अलगाव एवं विभेदकारी विदेशी विचारधारा, धर्म, मजहब सहित वोट बैंक की राजनीति एवं तुष्टिकरण की नीतियों का बोध जनमानस को कराना, 3. सामाजिक समरसता का वातावरण तैयार करना, 4. मैकाले और मार्क्स के मानस पुत्रों द्वारा भारतीय समाज में फैलाये जा रहे भ्रम व दुष्प्रचार का प्रभावी उत्तर देना आदि। इसके लिए संघ आज भी राष्ट्र-समाज के सभी घटकों, विद्वदजनों, कार्यकर्ताओं, राजनेताओं, प्रशासनिक वर्ग, आध्यात्मिक चिन्तकों आदि में समन्वय स्थापित कर उनका प्रबोधन कर रहा है।

संघ का उद्देश्य है-मानव मात्र का योगक्षेम। संघ का मानना है कि मानव मात्र का योगक्षेम उसके क्षेत्रीय संसाधनों की उपलब्धता से करना सहज, सुलभ एवं समीचीन होता है। इसके लिए संघ ने समाज में स्वदेशी जागरण का भाव उत्पन किया है जिसमें व्यक्ति अपना जीवन-निर्वाह अपने आस-पास व राष्ट्र-समाज में विद्यमान उपलब्ध संसाधनों से करता है स्वदेशी के उपयोग से राष्ट्र को परम वैभव तक ले जाने हेतु प्रेरित होता है। स्वदेशी आन्दोलन पर भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री चन्द्रशेखर ने कहा था- ''राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ द्वारा शुरू किया गया आन्दोलन, स्वदेशी सुरक्षा अभियान महज एक आर्थिक

आन्दोलन नहीं बल्कि यह भारत की अखण्डता और पहचान के लिए उठाया गया कदम है।'' (श्री चन्द्रशेखर, भारत के पूर्व प्रधानमंत्री, हिन्दुस्तान टाइम्स, 04.12.1994)

19 सितम्बर 1949 की तत्कालीन नेहरू सरकार द्वारा भारतीय मुद्रा रुपये का 30.50 प्रतिशत अवमूल्यन किया गया जिसका संघ ने विरोध किया एवं विदेशी ऋण को अनुचित बताया।

जी.डी.पी. आधारित विकास का पश्चिमी मॉडल मनुष्य की आर्थिक अवधारणा पर आधारित है जिसके अनुसार प्रत्येक मनुष्य अर्थ (धन) के आधार पर ही सारे निर्णय करता है। पश्चिम में अधिकाधिक वस्तुओं और सेवाओं का उपयोग करते हुए रहन-सहन के स्तर में वृद्धि को ही जीवन का लक्ष्य माना जाता है जो उपभोक्तावादी एवं भोगवादी जीवन शैली को बढ़ावा देकर आर्थिक संसाधनों का शोषण किया जाता है। जी.डी.पी. आधारित विकास में वृद्धि हेतु प्राकृतिक संसाधनों का शोषण किया जाता है और ऊर्जाभक्षी तकनीक पर आधारित बड़े उद्योग तन्त्र स्थापित किये जाते हैं जिससे पर्यावरण प्रदूषण, ऊर्जा संकट एवं बेरोजगारी बढ़ती है।

भारत के परिप्रेक्ष्य में संघ का विचार है कि जी.डी.पी. आधारित विकास-प्रगति की अवधारणा, भ्रामक एवं अव्यावहारिक है। इसके स्थान पर हमें भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रकृति, प्रवृत्ति एवं संस्कृति के अनुसार एकात्म मानव दर्शन एवं एकात्म विश्वदृष्टि के अनुसार देश में उपलब्ध तकनीक को देश की आवश्यकता एवं संसाधनों के अनुकूल बनाना होगा। हमें प्रकृति का शोषण नहीं अपितु विवेकपूर्वक दोहन करना है।

एक ओर कृषि विकास के लिए 10 से 15 गाँवों को मिलाकर एक सामुदायिक इकाई गठित कर कृषि-औद्योगिक उत्पादन बढ़ाना चाहिए तथा दूसरी ओर लघु उद्योगों एवं घरेलू उद्योगों को बढ़ाकर औद्योगिक विकेन्द्रीकरण व निर्यात बढ़ाना चाहिए।

सहज रूप से लोगों से मिलना-जुलना और समाज से सम्पर्क-सम्वाद स्थापित करते रहना ही संघ की कार्य पद्धति है। संघ की कार्य पद्धति अनौपचारिक है और किसी तन्त्र पद्धति पर आधारित नहीं है। इसलिए सरकारों द्वारा प्रतिबन्ध लगाकर संघ की शाखाएँ बन्द करने के बावजूद लोगों से सम्पर्क मात्र द्वारा संघ का कार्य अविरल निर्बाध रूप से जारी रहता है।

कुछ राष्ट्रविरोधी ताकतों ने सिक्खों को हिन्दुओं से पृथक बताकर उन्हें दिग्भ्रमित किया और बहुत पहले पंजाब के मोगा में संघ की शाखा पर हमला कर आतंकवादियों ने 17 स्वयंसेवकों को मार दिया, लेकिन संघ नेतृत्व ने कभी सिक्ख समाज पर कोई प्रतिक्रिया नहीं दी, अपितु हिन्दु-सिक्खों में सद्भाव बढ़ाने हेतु अपने प्रचारकों को पंजाब भेजा व अलगाववाद के चरम पर होने के समय साँझीवालता को मजबूत किया। संघ की दृष्टि में सिक्ख पंथ एक सामाजिक पांथिक एवं राष्ट्रीयचेतना का आन्दोलन है जो साँझीवालता व समरसता का प्रतीक है।

कुछ लोग संघ के राष्ट्रवाद को यूरोपीय उग्र राष्ट्रवाद एवं जर्मनी के नाजीवाद से जोड़कर संघ का तिरस्कार करते हैं। इसके विपरीत संघ वसुधैव कुटुम्बकम् का आग्रही होकर ईसाइयत एवं इस्लाम के प्रति भी उदारता के भाव रखता है। संघ तो संसार की परिवर्तनशीलता को अपनी कार्यप्रणाली में स्थान दे कर वैचारिक जागरण एवं संस्कृति के संरक्षण का कार्य करता है।

भारत की सबसे बड़ी कमजोरी है सामाजिक भेदभाव और परतन्त्रता की मानसिकता 18 मई 1974 को संघ के तृतीय सरसंघचालक बालासाहेब देवरस ने पुणे में घोषणा की कि ''अगर अस्पृश्यता पाप नहीं है तो इस धरा पर कुछ भी पाप नहीं है।'' इसके बाद भारतीय समाज में छुआछूत-भेदभाव खत्म होने लगा।

इससे पूर्व 1932 ई. में संघ की शाखा में कुछ स्वयंसेवकों ने अछूत बालकों के साथ भोजन करने से मना कर दिया था। इस पर केशवराय बलिराम हेडगेवार ने उन अछूत बालकों के साथ ही शाखा में भोजन किया जिससे प्रेरित हो उन सवर्ण बालकों ने भी अछूत जाति के बालकों के साथ भोजन किया। संघ में प्रारम्भ से ही अस्पृश्यता को कोई स्थान नहीं दिया गया है।

भारत में पश्चिमी संस्कृति के अनुगामी चिंतक एवं विचारक राजनीति एवं समाज में सन्तुलन बनाये रखने के लिए ''सामाजिक समता'' शब्द का प्रयोग करते हैं। डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने स्वतन्त्रता समता और बन्धुता को अपने जीवन की तत्वत्रयी बताया। संघ ने भविष्य के भारतीय समाज के व्यापक एवं दीर्घकालीन हितों को दृष्टिगत रख कर स्वतन्त्रता, समता एवं बन्धुता का संगम ''सामाजिक समरसता में देखा। वामपंथी ''सामाजिक समता'' शब्द का प्रयोग कर के जाति-पाँति को समाप्त करना चाहते हैं जबकि संघ समरसता के द्वारा जाति को कायम रखकर विभिन्न जातियों में परस्पर सम्पर्क-सद्भाव बढ़ाता है।

संघ का मानना है कि राष्ट्रीय सम्मान और शांति के लिए सर्वप्रथम राष्ट्रीय शक्ति का निर्माण आवश्यक है। कमजोर व्यक्ति और कमजोर राष्ट्र शक्ति के अभाव में अक्सर अपमानित होता है। स्वतन्त्रता प्राप्त होते ही भारत पर पाकिस्तान का हमला, 1962 में चीन का हमला, 1965 में फिर पाकिस्तान का हमला हमारी कमजोरी के परिणाम थे। संघ का मानना है कि पंचशील और पड़ोसियों के साथ मूल्य आधारित सम्बन्धों की स्थापना के सिद्धान्त, अत्यधिक विनम्रता व शांति की अपील से भारत पर कई आक्रमण हुए और घुसपैठ हुई। 14 नवम्बर को चीन ने 14 भारतीय सैनिकों की हत्या करके उनके शव भारत में फेंक कर नेहरू की शांतिपूर्ण नीति पर करारा तमाचा जड़ा था।

आज संघ के स्वयंसेवक और प्रचारक रह चुके प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में केन्द्र सरकार ने पड़ोसी राष्ट्र पर सर्जिकल स्ट्राइक कर, आतंकवादियों पर कड़ी कार्यवाही करके भारत की विश्व में धाक जमा दी है।

हाल ही के वर्षों में संघ ने भारत में यहाँ के मूल निवासियों एवं हिन्दुओं की जनसंख्या में कमी को लेकर गहरी चिन्ता प्रकट की है। संघ को डर है कि अगर ऐसा ही चलता रहा तो 2061 की जनगणना में हिन्दू भारत में अल्पसंख्यक हो जाएँगे।

काव्य प्रकाश के लेखक आचार्य मम्मट के अनुसार यश की आकांक्षा काव्य सृजन का प्रथम कारण है। इसके ठीक विपरीत स्वयंसेवकों द्वारा रचित संघ-गीतों में रचयिताओं के नाम कहीं नहीं लिखे गये हैं। ये स्वयंसेवक संघ के विचारों-कार्यों तथा मातृभूमि की साधना-आराधना में अपनी कविता और जीवन होम करते हुए स्वयं शून्य में विलीन हो जाते हैं।

संघ-गीतों में राष्ट्रीयता सनातन धर्म और संस्कृति का महात्म्य, राष्ट्रीय और भारतीय नैतिक मूल्य

दृष्टिगोचर होते हैं। इनके श्रवण, मनन, पाठन और उच्चारण से हमें देश, धर्म और संस्कृति पर स्वयं को न्यौछावर कर देने की प्रेरणा मिलती है। कुछ प्रमुख एवं प्रेरणादायी संघ-गीत हैं जिन्हें भारतीय समाज सहित सभी स्वयंसेवक गुनगुनाते रहते हैं- ''हम करें राष्ट्र आराधन...'' इसमें भारत की श्रेष्ठता और राष्ट्र के प्रति सम्मान प्रकट किया गया है।

''भुजाओं में भीम सा बल, रगों में ऋषि-रक्त संचार कर दो'' में भारत की राष्ट्रीय और सांस्कृतिक एकता हेतु बल प्राप्त करने का भाव है।

''ले चले हम राष्ट्र नौका को भँवर से पार कर'' गीत में देश-समाज की परिवर्तित स्थितियों से विचलित हुए बिना राष्ट्र निर्माण और भारत को पुनः विश्व गुरु के पद पर आसीन करने का ध्येय प्रकट किया गया है।

''चिंतन चरित्र में अब, विकृति बढ़ी है। चहुँओर कौरवों की सेना खड़ी है।'' गीत द्वारा वैश्वीकरण-उदारीकरण के दौर में बहुत राष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा अपसंस्कृति का प्रसार, विदेशी चकाचौंध से दिग्भ्रमित समाज से जूझने की प्रेरणा दी गई है।

''अति विकट निकट संकट का तट सिर पर है, परवाह नहीं जब रक्षक जगदीश्वर है।'' गीत में देश, धर्म और संस्कृति पर मर मिटने की प्रेरणा दी गई है। ''तन समर्पित, मन समार्पित और यह जीवन समर्पित चाहता हूँ इस देश की धरती तुझे कुछ और भी दूँ।'' गीत के माध्यम से युवाओं और स्वयंसेवकों में राष्ट्रीय के प्रति समर्पण और देशप्रेम की भावना जाग्रत की गई है।

''केशवं स्मरामि सदा परमपूजनीयम'' जैसे गीतों के माध्यम से डॉ. केशव राय बलिराम हेडगेवार जैसे कई महापुरुषों के दिये पाथेय पर चलने की प्रेरणा दी गई है।

''बाधाएँ आती हैं आएँ घिरें प्रलय की घोर घटाएँ। आग लगाकर जलना होगा, कदम मिला कर चलना होगा।'' तथा ''आँखों में वैभव के सपने, पग में तूफानों की गति हो। राष्ट्र भक्ति का ज्वार न रुकता, आए जिस जिसकी हिम्मत हो।'' गीत के माध्यम से आपातकाल और संघ पर प्रतिबन्ध जैसी विपरीत परिस्थितियों में समाज का मनोबल बनाये रखने की हिम्मत दी गई है।

''मातृ मन्दिर का समर्पित द्वीप में'' गीत द्वारा लोकमंगल के साथ-साथ विश्वमंगल हेतु भारतीय मनीषा में निःस्वार्थ भाव और सद्भावना जाग्रत करने का प्रयास किया गया है।

सनातन काल से चले आ रहे भारतीय त्यौहारों, उत्सवों सहित पर्यावरण के संरक्षण का ध्यान भी संघ-गीतों में रखा गया है-

स्वार्थ साधना की आँधी में
वसुधा का कल्याण न भूलें।

जब कोई साथ भी नहीं हो, तब भी अकेले चलते रहने की प्रेरणा संघ गीत देते हैं-

न हो साथ कोई अकेले बढ़ो तुम,
सफलता तुम्हारे चरण चूम लेगी।

संघ से दूर रहने वाले, संघ से निरपेक्ष रहने वाले और यहाँ तक कि संघ के विरोधी भी संघ में व्याप्त अनुशासन व्यवस्था की मुक्त हृदय से प्रशंसा करते हैं। सुप्रसिद्ध न्यायमूर्ति के.टी. थामस ने राष्ट्रीय

स्वयंसेवक संघ के अनुशासन को देखकर इसके प्रति श्रद्धा प्रकट की है और इसके सदस्यों की सादा जीवन और उच्च विचार शैली की प्रशंसा की है।

संघ के आलोचक एम.के. सिंह वरिष्ठ पत्रकार का मानना है कि ''पूरी दुनिया में व्यक्ति निर्माण, राष्ट्र निर्माण और विश्व निर्माण अगर कोई एक संगठन कर सकता है तो वह संघ है और उसका वैचारिक आधार होगा युग-पुरुष पण्डित दीनदयाल उपाध्याय का ''एकात्म मानववाद।'' यह मार्क्सवाद के बाद पहला दर्शन है जो दुनिया के चिन्तन को बदल सकता है और एक नये विश्व की सर्जना कर सकता है।'' (पांचजन्य, 11 दिसम्बर 2016, ''अप्रतिम संगठन फिर भी मेरी शंकाएँ'' पृ. 122)

संघ के कटु आलोचक एन.के. सिंह ने संघ द्वारा बच्चों के चरित्र निर्माण से प्रभावित होकर घोषणा की है कि- ''आज के दौर में अगर मेरे पास बेटा होता तो मैं उसे शाखा ज़रूर भेजता, स्वस्थ व्यक्तित्व विकसित करने के लिए। अपने आलेख में एन.के. सिंह ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि ''संघ जैसी क्षमता और उद्देश्य की पवित्रता शायद किसी में नहीं रही न रहेगी।'' (पांचजन्य, 11 दिसम्बर 2016, पृष्ठ 123, ''अप्रतिम संगठन फिर भी मेरी शंकाएँ'')

भारतीय संस्कृति के आधार स्तम्भ विविधता में एकता को स्वीकार कर कार्य करने वाले राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की भारतीय समाज के जनजागरण एवं राष्ट्रनिर्माण में भूमिका सूर्य की रोशनी के समान जगजाहिर है। संघ ने व्यष्टि निर्माण से समष्टि निर्माण के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण हेतु अपने स्वयंसेवकों का चरित्र निर्माण कर ऐतिहासिक एवं पौराणिक कार्य किया है। संघ केवल एक संगठन मात्र नहीं है अपितु यह भारत की गौरवमयी संस्कृति को अक्षुण्ण रखने, भारतीय दर्शन एवं चिन्तन को प्रोत्साहित करने तथा चिरन्तन भारतीय समाज की शक्ति को निरन्तर प्रवहमान रखने का वैचारिक आन्दोलन है जिसके द्वारा आत्मानुशासन और चरित्र निर्माण के माध्यम से सकल देशवासियों का कल्याण कर भारतवर्ष को परम वैभव तक पहुँचाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

समग्रत: कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ भारत की एक शान्तिप्रिय, समन्वयवादी एवं सहिष्णु सोच है जो भारतवर्ष को निरन्तर उन्नति-प्रगति के पथ पर देखना चाहती है और विश्वशांति तथा विश्व कल्याण की कामना करती है।

सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वे सन्तु निरामया

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद दु:ख भाग भवेत।।

आधुनिक भारतवर्ष के राष्ट्रोत्थान में राष्ट्रीय स्वयंसेवक का अतुलनीय एवं अविस्मरणीय योगदान है।

संपर्क : *निम्बाहेड़ा (राजस्थान)*
मो. 94686 61278, 88901 96388

डॉ. कृष्णा शर्मा

परिवार की सत्ता को स्वीकारती कहानियाँ

विमर्शों के वर्तमान परिदृश्य में स्त्री-विमर्श अब कोई नया शब्द नहीं है, पिछले दो-ढाई दशकों में इसने अपना सौंदर्य-शास्त्र भी तैयार कर लिया है, लेकिन प्रश्न यह है कि 'स्त्री-विमर्श' जैसा शब्द न होने के बावजूद भी क्या भारतीय चिंतन में 'स्त्री-मुद्दे' एकदम अनुपस्थित थे? भारतीय वाङ्मय के गहन अध्येता इस तथ्य से परिचित ही नहीं, सहमत भी होंगे कि समूची भारतीय चिंतन परंपरा स्त्री प्रश्नों से न केवल टकराती है, उनसे मुठभेड़ भी करती है, वरन् भारतीय परिपेक्ष्य में उनके उत्तर भी ढूँढ़ती है। भारतीय मनीषा स्त्री की स्वतंत्रता का प्रश्न पारिवारिक व्यवस्था के भीतर खोजती है, परिवार के बाहर नहीं। जिस चिंतन परंपरा में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' कह कर समूचे विश्व को ही परिवार माना गया हो, वह 'परिवार संस्था' का निषेध कर सकती है। अस्तु हमारे यहाँ स्त्री हो या फिर पुरुष, कोई भी इस 'परिवार संस्था' से परे नहीं है, स्त्री यहाँ इस रूप में पुरुष के सर्वथा समान है। परिवार के केंद्र में पति-पत्नी हैं, और स्त्री वहाँ 'सहधर्मिणी' है, सहचरी है। लेकिन यह भी सच है कि आठवीं शताब्दी के पश्चात् और विशेष रूप से निरंतर विदेशी आक्रमणों झेलने के परिणामस्वरूप भारतीय समाज व्यवस्था का दरकना स्वभाविक था। बाल-विवाह, पर्दा-प्रथा जैसी कुप्रथाएँ धीरे-धीरे अपनी जड़ जमाती गईं अन्यथा यहाँ तमाम पुराख्यानों में स्त्री को स्वयंवर के माध्यम से स्वयं ही अपना जीवन-साथी चुनने की स्वतंत्रता ही नहीं बल्कि स्थापित 'प्रथा' थी। सीता हो, द्रौपदी हो या फिर यशोधरा सभी ने अपनी इच्छा से अपनी शर्तों पर अपने साथी को चुना। मध्यकाल में सामाजिक व्यवस्था में दरार आने के पश्चात् निश्चित ही स्त्री की वह स्थिति नहीं रह गई जो उसे पूर्व में प्राप्त थी। भारतीय समाज की इस सच्चाई को जान लेने के पश्चात हम 'स्त्री-विमर्श' के न केवल समुचित संदर्भों में समझ सकते हैं बल्कि स्त्री मुक्ति जैसे भ्रामक नारों के खोखलेपन को भी पहचान सकते हैं। इन बिंदुओं को लेकर हिंदी साहित्य जगत में शिवानी, चित्रा मुद्गल, राजी सेठ, सूर्यबाला, सुषमा मुनींद्र, ममता कालिया, मंजुल भगत, निरुपमा सेवती, दीप्ति खंडेलवाल जैसी महिला लेखिकाएँ हैं जिन्होंने 'स्त्री प्रश्नों' को भारतीय परिपेक्ष्य में ही परखा है न कि किसी आयातित और आरोपित संदर्भ में। इन लेखिकाओं की पंक्ति में मालती जोशी ऐसा नाम है जिन्होंने 'परिवार' को भारतीय समाज की अनिवार्य सच्चाई और आवश्यकता मानते हुए अपना समूचा कथात्मक लेखन रचा है। उनकी कहानियों में परिवार के भीतर होने वाली सारी सच्चाइयाँ विद्यमान हैं, पारिवारिक संबंधों में झगड़े, कुचक्र, प्रपंच भी हैं, दुविधाएँ हैं, लेकिन इस यथार्थ का वे सामना करती हैं, पलायन नहीं। उनके समूचे लेखन में

परिवार की दिक्कतों का समाधान परिवार के भीतर है, परिवार से इतर नहीं। इस मायने में मालती जोशी सही अर्थों में महिला-लेखन ही नहीं 'स्त्री-विमर्श' के कोण से भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण लेखिका हैं। मालती जोशी इस कालखंड में इन सभी लेखिकाओं के मध्य अपनी पहचान बनाने में सफल हुई हैं। उन्होंने अपनी समकालीन लेखिकाओं की भाँति सिर्फ सेक्स तथा प्रेम आदि को बाँधकर नहीं रखा बल्कि मध्यवर्गीय परिवार से संबंध रखने के कारण नारी को मर्यादा में बाँधकर और परिवार की एकता और प्रभुता के मध्य में रखा है। यूँ भी व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र अलग-अलग इकाइयाँ कहाँ हैं? एक-दूसरे से कट कर क्या एक को भी समग्रता में जाना-समझा जा सकता है।

मालती जोशी का रचनाकर्म कविता लेखन से आरंभ होता है परंतु स्वयं लेखिका के अनुसार 'मैंने सप्रयास कभी नहीं लिखा। कभी मैं अपने को मीरा और महादेवी की उत्तराधिकारिणी समझती थी। आज कविता की दो पंक्तियाँ लिखना मेरे लिए कठिन है।' (आलोचना में सहमति असहमति - मैनेजर पांडेय,पृष्ठ - 156)

मालती जी का एकमात्र गीत संग्रह 'मेरा छोटा सा अपना मन' है। मालती जोशी को 'मालवा की मीरा से विभूषित किया गया पर सबके जीवन में वसंत एक बार अवश्य आता है। मेरे जीवन में भी आया, पर अकेला नहीं आया था। काव्य एक फागुनी बौर लेकर आया था, गीतों का एक झरना सा फूट पड़ा था' पर उन्हीं के अनुसार कालांतर में यह स्रोत अपने आप ही यथार्थ की रेतीली धरती में कहीं सूख गया। (आलोचना में सहमति असहमति - मैनेजर पांडेय,पृष्ठ - 176)

वर्ष 1952 में उनकी पहली कहानी कानपुर की पत्रिका 'अरुण' के वर्षा अंक में छपी थी शीर्षक था 'माँ'। तब से आज तक वह निरंतर रचनाकर्म में रत हैं। बाल साहित्य भी लिखा, संस्मरण और उपन्यास भी। पर कहानी लिखने में ही उनका मन अधिक रमा और वह इसका कारण भी बताती हैं 'जो भी कहना, वह मैं जल्दी से कह सकती हूँ उपन्यास का ताना-बाना लेना होता है, इसे अंतिम छोर तक बाँधकर ले जाना पेशेंस का काम है। इसलिए मुझे कहानी लेखन अधिक भाया।' (उत्तर आधुनिकता की ओर - कृष्णदत्त पालीवाल, पृष्ठ - 100)

मालती जी की कहानियों में मध्यवर्गीय परिवारों की ही दास्तान है, क्योंकि यह मालती जी की जानी-पहचानी दुनिया है। मध्यवर्ग ही वास्तव में नैतिकता की रक्षा करता है। सारे सामाजिक और धार्मिक रस्मोरिवाज निभाता है। मध्यवर्ग के छोटे-छोटे दुख, छोटी-छोटी समस्याएँ उनकी कहानियों में अनायास हैं। उनसे जब पूछा गया की अन्य वर्गों के बारे में वह कभी नहीं लिखतीं तो उन्होंने कहा 'इसका उन्हें अनुभव नहीं है। उधार के अनुभवों से वह कभी नहीं लिखतीं।' (उत्तर आधुनिकता की ओर - कृष्णदत्त पालीवाल, पृष्ठ - 99)

मालती जोशी की कहानियों का घरेलूपन ही उनकी शक्ति है। उनकी दुनिया घर-आँगन में ही सिमटी है, परिवार ही उनकी कहानियों का केंद्र है। उनके कथा साहित्य को पढ़ते हुए एक ऐसी लेखिका से मुलाकात होती है, जो बोलती कम है पर उसका आशय यह कतई नहीं है कि वह समझौतावादी है। वह बेटी है, बहन है, पत्नी है, माँ है और न जाने क्या-क्या है और उसकी उपलब्धि यह भी है कि अपने सभी रूपों में, उसने खामोशी से अपना सर्वश्रेष्ठ योगदान देने का निरंतर प्रयास किया है। लेखिका स्वयं को एक

आम मध्यवर्गीय महिला के रूप में ही समझती है। उन्हें अपने बारे में कोई मुगालता नहीं है कि वे कोई बड़ी साहित्यकार बन गई हैं। यह कहना उचित होगा कि जीवन के इस मोड़ पर भी लेखिका के पाँव जमीन पर ही हैं। आज एक अक्षर लिखना शुरू करने से पूर्व कलम सँभालते ही स्वयं को श्रेष्ठता की दौड़ में शामिल करने की जुगाड़बाजी और पुरस्कारों के लिए जोड़तोड़ करने की पैंतरेबाजी बहुत आम है। इस दृष्टि से मालती जोशी भीड़ में होते हुए भी अपने आचरण और व्यवहार की बदौलत स्वयं को भीड़ से अलग साबित करने में पूरी तरह सफल रही हैं।

यदि परिवार उनकी प्राथमिकता रही है तो परिवार भी उनकी उपलब्धियों से हमेशा गौरवान्वित अनुभव करता रहा है। वह किसी भी राजनीतिक दल, सामाजिक संस्था या लेखकीय संगठन की सदस्य नहीं हैं। उनका मानना है कि जिसके पास संवेदनशील मन है वह किसी भी दुख, अन्याय, अत्याचार को अनदेखा नहीं कर सकता। उन्हें कथा बीज ढूँढ़ने के लिए कहीं बाहर नहीं जाना पड़ता।

मालती जोशी के विवेचनात्मक गद्य का एक उज्ज्वल अंश यह है कि जहाँ उन्होंने नारी की समस्याओं पर विचार किया है, वहाँ पुरुषों को खलनायक नहीं दिखाया है। स्त्री और पुरुष के बीच सहयोग की आकांक्षा रही है। दोनों के व्यक्तित्व की गरिमा बनी रहे, कोई किसी को आहत न करे। आज भी नारी के अन्याय के कारण खोजने पर सर्वप्रथम हमारा ध्यान नारी के गलत समाजीकरण पर जाता है। माता आज भी पुत्री को पुरुष से दबकर रहने का संदेश देती है। लड़की के जन्म से ही उसकी हीनता की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। इस गलत समाजीकरण के कारण नारी मनोविज्ञान पर गहरा प्रभाव पड़ता है। वह वास्तव में पुरुष से भिन्न है। अपराधबोध उसका पीछा कभी नहीं छोड़ता है। मध्यवर्ग अपनी सम्पूर्ण शिक्षा के बावजूद समर्पिता नारी बनने के लिए विवश है। एक सुनियोजित षड्यंत्र द्वारा मध्यवर्गीय नारी की व्यक्तित्वहीनता बनाई जाती है। एक तरह से मनोवैज्ञानिक तरीके से उसका रूपान्तरण किया जाता है। 'और यह एहसास आपके भीतर किसने पैदा किया? आपके पति परमेश्वर ने ही न? आपके रूप रंग को लेकर उन्होंने इतनी तरह से इतनी बार कोंचा होगा कि आप कभी भी सिर न उठा सकीं। मुझे बताइए क्या रूप ही सबकुछ है? आपके सारे गुण, शिक्षा-दीक्षा, आचार-व्यवहार का कोई महत्त्व नहीं है? कोई मूल्य नहीं है? क्या चेहरे की सुंदरता से चरित्र के अवगुण छुप जाते हैं।' (वो तेरा घर, ये मेरा घर- मालती जोशी, पृष्ठ - 16)

मालती जोशी जी की प्रतिरोध कहानी में स्त्री में अभाव का भाव, कमतर का भाव भी पुरुष ही भरता है जिससे स्त्री आजन्म हीन ग्रंथि से ग्रस्त रहे। नारी उत्पीड़न के प्रश्न को बारीकी से देखने पर यह अनुभव होता है कि समाज में सभी वर्गों में शिक्षित या अशिक्षित, कामकाजी या घरेलू महिलाओं में महिलाएँ नारी को प्रताड़ित करने में बराबर की हिस्सेदार हैं। 'बिशन रे, मेरी माने तो इस छोकरी को भी लगे हाथ निबटा दे। आजकल की लड़कियों का कोई ठिकाना है। कब किसका हाथ पकड़कर चल दे और फिर तेरे यहाँ तो कोई देखने वाला भी नहीं है।' इन वाक्यों में व्यंग्य की दोहरी मार होती मम्मी पर। पर वे किसी बात का उत्तर नहीं देतीं। (मालती जोशी प्रतिनिधि साहित्य-संपा। डॉ. कमल किशोर गोयनका, डॉ. अवनिजेश अवस्थी, डॉ. कृष्णा शर्मा, पृष्ठ - 30)

स्वातंत्र्योत्तर भारत में नारी के संबंध सीता और सावित्री के सम्बन्धों से युगों आगे बढ़ गए हैं। अब

न तो पुरुष राम है और न ही स्त्री सीता। नवीन आयामों में नए रिश्ते बनाए जा रहे हैं-कहीं दोस्ती, कहीं पारस्परिक पहचान और कहीं कुछ कदम का साथ। इन नए सम्बन्धों में पर्याप्त विविधता है। कृष्णदत्त पालीवाल जी ने 'उत्तर आधुनिकता की ओर' में लिखा 'रामायण-महाभारत ने जो मूल्य हमें दिए थे और जिनके बल पर यह समाज और साहित्य न जाने कब से शक्ति पाता आ रहा था उस मूल्य-प्रेरणा का ही अंत दिखाई दे रहा है। उपेक्षिता नारियों पर उनके तप, त्याग पर नारी के सतीत्व भाव पर टिकने वाले तुलसीदास, जायसी, मैथिलीशरण गुप्त और जयशंकर प्रसाद का पूरा चिंतन देखते-देखते बेदम हो रहा है। कामायनी का पूरा शक्ति दर्शन आधुनिकता और उत्तर आधुनिकता के बनावटी दर्शन के चलते अप्रासंगिक हो गया है।' (उत्तर आधुनिकता की ओर - कृष्णदत्त पालीवाल, पृष्ठ - 99)

यह भी विडम्बना है कि स्त्री से अभी भी रामायण और महाभारत में वर्णित चरित्रों की अपेक्षा की जाती है। पुरुष मानसिकता उससे आगे सोच ही नहीं पाती, बढ़ ही नहीं पाती। सुप्रसिद्ध महिला कथाकार चंद्रकांता के शब्दों में 'स्त्री विमर्श को वृहत्तर अर्थों में परिभाषित करना चाहें, तो वह घर-परिवार, समाज नीति और राष्ट्र नीति में नारी की अस्मिता, अधिकार और उन अधिकारों के संघर्ष चेतना से जुड़े संवाद की संकल्पना है।' (स्त्री विमर्श की अवधारणा और हिन्दी साहित्य - चंद्रकांता, पृष्ठ- 17)

यदि हम इतिहास-पुराण के पुनर्पाठ के तहत रामायण की सीता और महाभारत की द्रौपदी का आकलन करें तो ये दोनों ही चरित्र पुरुष वर्चस्वता के तमाम दबावों के बावजूद स्त्री चेतना की अद्भुत मिसालें रचते हुए दिखाई देते हैं। द्रौपदी और सीता एक आदर्श स्थापित करते हुए भी अपने व्यक्तित्व के स्वाभिमान की रक्षा करती दिखाई देती हैं।

'अवसान एक स्वपन का' कहानी में दोनों बहने पल-पल अपने स्वाभिमान को बचाए रखने के लिए प्रयासरत हैं। समाज से उन्हें केवल सम्मान चाहिए। तुम चुप रहो दीदी, हर बात में क्षमा-याचना की मुद्रा में खड़े होने की जरूरत नहीं है। इस बार मैंने दीदी को डपट दिया और फिर भाभी से मुखातिब हुई। 'हाँ तो किस दान की बात कर रही थीं आप। दीदी कोई आलू-बैंगन है कि उन्होंने माँगा और आपने उठा कर दे दिया।' (औरत एक रात - मालती जोशी, पृष्ठ - 58)

आधुनिक युग में उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण व्यक्ति अपने वृद्ध माता, पिता के प्रति संवेदनशील और निर्मम हो उठा है। पति के मरने के बाद स्त्री की स्थिति पूरी तरह संतान पर निर्भर हो जाती है, विशेष रूप से बेटे पर। बेटियाँ फिर भी माँ को लेकर चिंतित रहती हैं। 'पिया पीर न जानी' कहानी संग्रह की कहानी में जीवनभर उपेक्षा का दंश झेलती रसिका क्षण भर में अपना जीवन तय कर लेती है पर वह फिर भी माँ के विषय में सोचती है कि पिता के सहारे वह अपनी माँ को नहीं छोड़ सकती और कहती है- 'खास बात जो कहने आई थी वह तो रह ही गई। सुनो जिस दिन तुम्हें ऐसा लगा कि अब उस घर में तुम्हारा गुजारा नहीं हो सकता, तुम मुझे सूचित करना। मैं तुम्हें पता दे जाऊँगी।' (पिया पीर न जानी- मालती जोशी,पृष्ठ - 38)

स्त्री का संबंध जिस प्रकार से गृहस्थी, बच्चे, परिवार, चूल्हा-चौका से जोड़ा गया और पुरुष का अहं, शक्ति, सत्ता से। जिसके कारण भाषा में लोक मर्यादा, प्रेम, ममता जैसे शब्द स्वत: ही स्त्री के लिए रूढ़ होते चले गये। स्त्री लेखन के माध्यम से किसी की पत्नी, किसी की माता के रूप में पहचानी जाने

वाली स्त्री ने अपने नाम से पहचान का प्रश्न सामने रखा और पहली बार ऐसे पात्र के रूप में सामने आई जो अपना नाम चाहती है। अत: आवश्यकता है तो समाज में स्त्री के प्रति रूढ़ मानसिकता को बदलने की। दरअसल मालती जोशी की कहानियाँ सच्चाई से न भागती हैं, न पलायन करती हैं, वे सीधे-सीधे शब्दों में उसे पाठक से रूबरू कराती हैं। उनके शिल्प में किसी तरह का बनावटीपन नहीं है और न ही किसी कथा आंदोलन का आरोपित नारा। वे कहानी लिखती नहीं हैं बल्कि कहती हैं-जो कहानी विधा की बुनियादी विशिष्टता है। कहना न होगा कि पाठक कहानी पढ़ते-पढ़ते स्वयं को उसका एक पात्र अनुभव करने लगता है-उसके लिए उस कहानी की दुनिया कोई दूसरी दुनिया नहीं है, वह तटस्थ नहीं रह पाता बल्कि कहानी पढ़ते-पढ़ते उसे जीने लगता है। यही कारण है कि मालती जोशी के हजारों पाठक उनसे स्वयं पत्राचार करते हैं, उनकी रचनाओं की प्रतीक्षा करते हैं। सही मायने में उनकी कहानी का हर पात्र वह 'आम आदमी' है जिसकी बात राष्ट्रीय राजनीति से लेकर साहित्य विमर्श में खूब कही जाती रही है, उस 'आम जन' को इतनी सहजता से रचना में साकार कर देना मालती जोशी के रचना संसार की अपनी निजी विशिष्टता है।

सम्पर्क : *नोएडा (उ.प्र.)*
मो. 9871726471

कु. प्रीति जायसवाल

हिंदी बाल कविता में पेड़ों का महत्व

'पेड़ लगाओ, जीवन बचाओ इस धरा को स्वर्ग बनाओ।'

पेड़ प्रकृति प्रदत्त अनमोल उपहार हैं। पेड़ हमारे पर्यावरण का एक अनिवार्य अंग भी हैं। पेड़ हमारे पर्यावरण को स्वच्छ, साफ एवम सुंदर बनाते हैं। मानव जीवन का अस्तित्व पेड़ों से ही है। पेड़ के बिना जीवित रहना असंभव है। इस धरा पर बहुमूल्य सम्पदा के समान हैं। मानव पेड़ों के माध्यम से अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करता है। यदि इस धरा पर पेड़ ही नहीं होंगे तो पर्यावरण का संतुलन ही बिगड़ जाएगा। पेड़ों को काटने के साथ साथ इनका रोपण भी किया जाना चाहिए। यदि पेड़ों को अत्यधिक मात्रा में रोपित नहीं किया गया तो धरती पर जीवन की संभावनाएँ ही समाप्त हो जाएँगी।

पेड़ मनुष्य का सबसे घनिष्ठ मित्र होता है। मानव के द्वारा लगाया गया एक पेड़ केवल उसे ही लाभान्वित नहीं करता बल्कि उसकी आने वाली कई पीड़ियों को भी लाभ पहुँचाता है।

पेड़ों को हरा सोना भी कहा जाता हैं। धरा पर जीवन प्रदान करने वाली गैस ऑक्सीजन और जल प्रदान करने का प्रमुख साधन पेड़ ही हैं। पेड़ वायु प्रदूषण को कम करने के साथ ही पर्यावरण को साफ एवं शुद्ध बनाए रखने में हमारी मदद करते हैं। जितने अत्यधिक पेड़ होंगे हमारा पर्यावरण भी उतना ही शुद्ध रहेगा।

'जिन क्षेत्रों में वृक्षों की बहुतायत है वहाँ ऑक्सीजन भरपूर मात्रा में मिलती है जिससे वहाँ के लोगों का स्वास्थ्य बेहतर रहता है। इन क्षेत्रों में गर्मियों में कम गर्मी और जाड़ों में कम ठंड पड़ती है क्योंकि वृक्षों की उपस्थिति पर्यावरण के तापमान को नियंत्रित रखती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि वृक्षों की उपस्थिति से पर्यावरण साफ सुथरा और स्वास्थ्यवर्धक रहता है।' (पर्यावरण और हम-राजीव गर्ग,राज्यपाल एण्ड सन्ज,कश्मीरी गेट, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1989 पृष्ठ 10)

विश्व में सभी ग्रहों में धरती ही एकमात्र ऐसा ग्रह है जहाँ जीवन रूपी पेड़ और पौधे हैं। पेड़ सभी मनुष्यों के लिए बहुत उपयोगी होते हैं। इसका प्रत्येक भाग जीवों को कुछ न कुछ अवश्य प्रदान करता है। पेड़, हवा, पानी, भोजन, लकड़ी, चारा जैसी बहुमूल्य चीजें मनुष्य को प्रदान करते हैं। ईंधन हमें पेड़ों की सूखी लकड़ियों से ही प्राप्त होता है। मानव जो कार्बनडाइऑक्साइड गैस छोड़ते हैं पेड़-पौधे उसे ग्रहण कर प्राणवायु के रूप में हमें ऑक्सीजन प्रदान करते हैं। पेड़ हमारे लिए बहुत उपयोगी होते हैं। फिर भी मानव

अपने लालच के चलते इनको काट देता है। नीम, तुलसी, आँवला, जैसे कई पेड़ औषधि के रूप में भी उपयोग किये जाते हैं। पीपल, बरगद, तुलसी जैसे कई अन्य पेड़ों को हमारी भारतीय परंपरा के अनुसार पूजा भी जाता है।

पेड़ों की घटती हुई संख्या के कारण प्रकृति असन्तुलित होने लगी है। बहुत सारे पक्षी तो पेड़ों पर ही निर्भर होते हैं। उनका बसेरा भी पेड़ पर होता है और उन्हें भोजन भी पेड़ के माध्यम से ही प्राप्त होता हैं। पेड़ों की अँधाधुंध कटाई से पृथ्वी पर ग्लोबल वार्मिंग की समस्या भी उत्पन्न हो गई है। पेड़ों की कटाई को रोकने के लिए जन जागरूकता की आवश्यकता है। जन-जन में पेड़ों के संरक्षण की चेतना को जाग्रत करना होगा।

हिंदी के बाल काव्य रचनाकारों ने भी अपनी रचनाओं में पेड़ों के महत्व को बताकर अपने कर्तव्य का निर्वहन किया है। डॉ. घमण्डी लाल अग्रवाल द्वारा रचित बाल कविता 'अपना पर्यावरण बचाएँ' में बालकों को पेड़ों को लगाने के महत्व को समझाते हुए पर्यावरण के प्रति जागरूक करने का प्रयास किया गया है। कविता की पंक्तियाँ उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत है-

'पेड़ हम एक लगाएँ/अपना पर्यावरण बचाएँ।/ प्राणवायु मिलती पेड़ों से/ पेड़ों से ही मिले लकड़ियाँ/ पेड़ घनी छाया देते हैं।/ पेड़ प्रदान करे औषधियाँ/ नहीं जानते उन्हें बताएँ/ पेड़ हरा सोना कहलाएँ।' (देवपुत्र पत्रिका, कविता-'अपना पर्यावरण बचाएँ'-डॉ घमण्डी लाल अग्रवाल, अंक जून 2016, पृष्ठ 45)

डॉ. प्रभा पंत ने अपनी बाल कविता 'पेड़' में वृक्ष की महिमा का वर्णन किया है और बालकों को पेड़ लगाने के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित भी किया है। पंक्तियाँ दृष्टव्य है-

'माँ मुझकों भी खुरपी दे दो/ मै भी पौध लगाऊँगा।/ सींचूगाँ पानी से उसको/ मैं भी पेड़ उगाऊँगा।/ पेड़ बड़ा जब होगा मेरा/ चिड़ियाँ गीत सुनाएँगी।/ आम लगेंगे जब उस पर/ कुतर-कुतर कर खाएँगे।/ चिड़ियाँ के संग खेलूँगा/ पेड़ों पर चढ़ जाऊँगा।/ ऊँची डाल पर लगा आम/ पेड़ पर चढ़ कर खाऊँगा।' (देवपुत्र पत्रिका, कविता-'पेड़'-डॉ प्रभा पंत,अंक जून 2017, पृष्ठ 29)

सुधा गुप्ता 'अमृता' ने पेड़ों की परोपकार-परायणता का वर्णन अपनी कविता में किया है 'पेड़-पेड़ तुम जिंदाबाद' शीर्षक उनकी बाल कविता दृष्टव्य है-

'पेड़-पेड़ तुम जिंदाबाद/ करते दुनिया तुम आबाद/ भूख लगे तो फल देते हो/ धूप लगे तो छाया/ गर्मी में पंखा झलते हो/ करते दान समूची काया/ कटता है जब कोई वृक्ष तो/ मौन मुखर करते संवाद/ आँधी तूफां से लड़ जाते/ शूरवीर हो तुम जांबाज/ पड़े बीमार दवा देते हो/ अंत समय तक देते साथ/ अपने पत्ते झरा-झराकर/ स्वयं बना लेते हो खाद/ बीज गिरा भू पर अपने तुम/ फिर, फिर से उग आते हो/ जीवन रुकता नहीं कहीं पर/ सबको ये सिखलाते हो।' (देवपुत्र पत्रिका, कविता-'पेड़-पेड़ तुम जिंदाबाद'-सुधा गुप्ता 'अमृता' अंक जून 2017, पृष्ठ 33)

डॉ. रामनिवास मानव की बाल कविता 'पेड़ लगाओ' पेड़ों के महत्त्व को प्रतिपादित करने में पूर्णतया सफल प्रतीत होती है। बाल कविता की पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं-

'पेड़ लगाओ पेड़ बचाओ/ जीवन को खुशहाल बनाओ।/ पेड़ बड़े हैं, औघड़ दानी/ देते जग को

जीवन-पानी।/ पेड़ जगत का ताप मिटाते/ तन-मन का संताप मिटाते।/ फल देकर भी पत्थर खाते/ पाठ विनय का हमें पढ़ाते।/ इनसे शुद्ध वायु मिलती है/ जीवन की बगिया खिलती है।/ पक्षी गिरगिट या बंदर है/ पेड़ों पर ही उनके घर है।/ सारी महफिल वही सजाते/ सुबह शाम गाते-बतियाते/ पेड़ लगाओ उन्हें बचाओ/ जग को जीने योग्य बनाओ।' (बालवाटिका पत्रिका, कविता-'पेड़ लगाओ'-डॉ रामनिवास 'मानव' अंक जून 2015, पृष्ठ 24)

सुरेखा शर्मा अपनी बाल कविता 'पर्यावरण' में पेड़ों के महत्व को स्वीकार करते हुए इस पावन धरती माँ को सजाने-सँवारने की बात कहती हैं और पर्यावरण को स्वच्छ एवं सुंदर बनाने का संदेश अपनी कविता के माध्यम से बालकों तक पहुँचाती हैं-

'वृक्षों से यह धरा सजाओ/ पर्यावरण स्वच्छ बनाओ/ इधर-उधर मत कूड़ा फेंको/ धरती का कण-कण महकाओ।/ पॉलीथिन से नाता तोड़ो/ जूट के बेग सभी अपनाओ/ वाहन चले बहुत ही कम/ बच्चों धुँए से धरा बचाओ।/ आओ सब मिल पेड़ लगाएँ/ जग प्रदूषण मुक्त बनाएँ/ अपनी प्यारी धरती माँ का/ पर्यावरण स्वच्छ बनाएँ।' (बालवाटिका पत्रिका, कविता-'पर्यावरण'-सुरेखा शर्मा, अंक जून 2014,पृष्ठ 24)

डॉ. रामनिवास 'मानव' अपनी कविता 'पेड़ लगायें' में पेड़ों का महत्व बताते हुए कहते हैं कि पेड़ों से हरियाली होती है। शुद्ध हवा और शुद्ध जल प्राप्त होता है। पेड़ हमें सबकुछ प्रदान करते हैं और बदले में कुछ लेते भी नहीं हैं। वे हमारे जीवन साथी भी हैं। कविता की पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं-

'आओ मिलकर पेड़ लगायें/ पावन पर्यावरण बनाएँ।/ धरती माँ का रूप निखारें/ सुंदर जग को और सँवारें।/ पेड़ों से हरियाली होगी/ घर-घर में खुशहाली होगी/ पात फूल और फल मिलेंगे/ शुद्ध हवा और जल मिलेंगे।/ पेड़ हैं सब कुछ दे देते/ बदले में कुछ भी न लेते/ सुख-दुख के हैं सच्चे नाती/ पेड़ हमारे जीवन साथी।' (पेड़ लगायें-पेड़ बचायें-डॉ रामनिवास 'मानव', प्रथम संस्करण 2015, पृष्ठ 5)

डॉ. रामनिवास 'मानव' अपनी एक और कविता 'वृक्षों का संवाद' में वृक्षों के महत्व को प्रतिपादित करते हुए कहते हैं-

'धरती पर सबसे बड़ा/ लगे वृक्ष उपहार।/ करते मानव का सदा/ वृक्ष बड़ा उपकार।/ जहाँ पर वृक्ष लगेंगे/ वहाँ पर जीव बचेंगें।' (पेड़ लगायें-पेड़ बचायें-डॉ रामनिवास 'मानव', प्रथम संस्करण 2015, पृष्ठ 7,8)

राजनारायण चौधरी अपनी कविता 'पेड़ हमारे पूज्य देवता' में पेड़ों के पूजा करने का महात्म्य बताते हुए कहते हैं-

'पेड़ हमारे पूज्य देवता/ सदा पेड़ को पूजें हम/ पेड़ बिना प्राणी न बचे/ कोई भू पर यह बूझें हम।/ पेड़ न हो तो प्राणवायु का/ शुद्धिकरण क्या है संभव/ रह सकते हम स्वस्थ सुखी क्या/ पेड़ न हो धरती पर जब?/ धरती की शोभा का एक/ बड़ा कारण हैं वन-उपवन/ वन-उपवन है वैभव अपना/ हीरा-मोती और रतन।/ आओ सब मिल वृक्षारोपण/ का अभियान चलाएँ हम/ वन-उपवन से सारी धरती को/ सच स्वर्ग बनाएँ हम।' (बालवाटिका पत्रिका, कविता-'पेड़ हमारे पूज्य देवता'-राजनारायण चौधरी, अंक जून 2013, पृष्ठ 10)

रामकिशोर शुक्ला ने अपनी कविता 'वृक्ष' में वृक्षों को जीवन का आधार,धरती का शृंगार तथा वृक्षों के मूल्यवान होने के साथ-साथ वृक्षों की उदारता की बात कही है-

'जीवन का आधार वृक्ष हैं/ धरती का शृंगार वृक्ष हैं।/ प्राणवायु दे रहे सभी को/ ऐसे परम उदार वृक्ष हैं।/ ईश्वर के अनुदान वृक्ष हैं/ फल, फूलों की खान वृक्ष हैं/ मूल्यवान औषधियाँ देते/ ऐसे दिव्य महान वृक्ष है' (देवपुत्र पत्रिका, कविता-'वृक्ष'-रामकिशोर शुक्ला, अंक जून 2016, पृष्ठ 25)

डॉ. जगदीश चंद्र शर्मा ने अपनी कविता 'निर्मल पर्यावरण बनाएँ' में पेड़ों के प्रति अपनी भावना को अभिव्यक्ति दी है-

'एक नया परिवर्तन लाएँ/ निर्मल पर्यावरण बनाएँ।/ पेड़ काटकर व्यक्ति स्वयं की/ झेल रहा है व्यथा प्रबल/ उजड़ गए वन बदले मौसम/ किसे मिलेगा एक हल/ जीव जंतु, पशु-पक्षी सब के/ मन में निर्भयता पनपाएँ?' (बालवाटिका पत्रिका, कविता-'निर्मल पर्यावरण बनाएँ'-डॉ जगदीश चंद्र शर्मा, अंक जून 2014, पृष्ठ 15)

इस प्रकार बाल काव्य रचनाकारों ने अपनी बाल कविताओं में पेड़ों के महत्व को स्वीकार किया है, पेड़ हमारे जीवन के लिए बहुत आवश्यक हैं। हमारी भारतीय संस्कृति में पेड़ों को पूजने की बात कही गयी है। ईश्वर ने हम मानवों को बुद्धि का गुण प्रदान किया है। मानवों में ही सोचने-समझने की क्षमता होती है। यदि हम इस बुद्धि का प्रयोग प्रकृति को नुकसान पहुँचाने में करते रहे तो यह हम मानवों के लिए नुकसानदायक होगा। अत: हम सभी को मिलकर शुभ संकल्प लेना चाहिए कि हम स्वयं के लिए ही नहीं बल्कि समस्त प्रकृति के लिए पेड़ों को संरक्षित और सुरक्षित रखेंगे और हमारी इस सुंदर धरा को हरा-भरा करेंगे। इसलिए हमें लोगों में जनजागृति लानी होगी और अधिक से अधिक पेड़ लगाने होंगे। यदि हम आज इस दिशा में कार्य करेंगे तभी हमारी आने वाली पीढ़ियों को इस दिशा में कार्य करने की प्रेरणा प्राप्त होगी। बालकों को वृक्षों के संरक्षण की जानकारी प्रदान करने के लिए विद्यालयीन शिक्षा में इसे शामिल करना चाहिए। जिससे बालकों में वृक्षों के प्रति जागरूकता बढ़े। वृक्षों की अँधाधुंध कटाई पर सरकार द्वारा रोक लगाई जानी चाहिए तथा कड़े नियम भी बनाये जाना चाहिए।

'पेड़ लगाने का लो संकल्प, प्रकृति को बचाने का यही है विकल्प।'

सम्पर्क : *इंदौर (म.प्र.)*
मो.9691290380

दुर्गाप्रसाद मालवीय

रवीन्द्रनाथ टैगोर के साहित्य में नैतिक व आध्यात्मिक मूल्य

मूल्य शब्द से तात्पर्य है किसी भौतिक वस्तु अथवा मानसिक अवस्था के उस गुण से है, जिसके द्वारा मनुष्य के किसी उद्देश्य अथवा लक्ष्य की पूर्ति होती है। मूल्यों का व्यक्ति के आचरण, व्यक्तित्व तथा कार्यों पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है, मूल्य अमूर्त होते हैं, ये सीखे जाते हैं, अर्थात् इन्हें हम देख नहीं सकते, अनुभव कर सकते हैं।

रवीन्द्रनाथ टैगोर उन साहित्य मनीषियों में हैं जिन्हें समय की परिधि में बाँधा नहीं जा सकता। उनका व्यक्तित्व बहुआयामी है। उन्होंने साहित्य के माध्यम से समाज को नैतिकता व भाईचारे का पाठ पढ़ाया है। उनके विचार नैतिक व अध्यात्म प्रधान, धर्म व दर्शन, साहित्य व संगीत, कला व विज्ञान के संबंध में भारतीय जनमानस के लिए नई क्रांति का शंखनाद करते हैं।

उन्होंने बच्चों व बड़ों को नैतिक व अध्यात्म के रास्ते पर चलने के लिए साहित्य में अनेक रचनाएँ लिखी हैं, न्यायमूर्ति, सजा किसको दया किस पर, काबुलीवाला, पोस्टमास्टर, शिशु भोलानाथ बलिदानी राजा आदि।

इनके साहित्य में मानवता, सेवा, समर्पण सहयोग, समन्वय दूसरों की पीड़ा आदि को देखा जा सकता है। बच्चों को हम जैसा व्यवहार, आचरण करना सिखाते हैं वैसे ही बच्चे आचरण करते हैं –

जैसे माता-पिता, गुरुजनों के पैर छूना, उनकी आज्ञा का पालन करना, बड़ों का सम्मान करना, छोटों से स्नेहवत् व्यवहार रखना मादक पदार्थों का सेवन व व्यसन से दूर रहना, सदाचरण करना, ये मूल्य ही व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। इन मूल्यों के आधार पर हम किसी समाज की प्रगति उन्नति अथवा परिवर्तन की दिशा निर्धारित करते हैं। उनकी एक प्रसिद्ध कहानी 'बलिदानी राजा' ईर्ष्या व द्वेष को निराधार कर मैत्री, प्रेम, भाईचारे व हृदय परिवर्तन के भाव को जाग्रत करती है। कौशल देश के राजा बड़े ही नेक दिल थे। उनकी उदारता, दया व त्याग के उदाहरण पड़ोसी राज्य में भी दिए जाते थे। वह अपनी प्रजा को पुत्र के समान समझते थे। आज उनका जन्मदिन है। इस खुशी में पड़ोसी राज्य काशी में भी दीपोत्सव प्रजा मना रही है, लेकिन काशी नरेश को इस बात से ईर्ष्या होती है। उन्होंने कौशल राजा के सिर को लाने वाले को सवा मन सोना देने का वचन दिया। उधर कौशल राजा एक व्यापारी के दु:ख को दूर करने के लिए अपना सिर खुशी से कटवाने को तैयार हुए। यह देखकर काशी नरेश का अहंकार चूरचूर को गया, उनका हृदय परिवर्तित हुआ।

हम किसी भी व्यक्ति को तलवार की धार पर नहीं, हृदय की धार पर जीत सकते हैं। ऐसी ही उनकी प्रसिद्ध कविता है, 'अगर तेरी पुकार पर' ये कविता हर बच्चे को नैतिक आत्मबल से प्रोत्साहित व

प्रेरित करती है।

'अगर तेरी पुकार पर न कोई आये
तो तू अकेला चल रे!
अकेला चल, अकेला चल, अकेला चल रे।
अगर कोई न करे बात अरे ओ रे अभागे,
अगर सभी रहें मुँह फेरे, डर से कँपें गात
तो फिर प्राणों को खोल,
अकेला चल रे!!'

(रवीन्द्रनाथ का बाल साहित्य-भाग 2, संपादक-लीला मजुमदार, क्षितिज राय, प्रकाशन-साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1971, पृष्ठ 61)

नैतिकता के प्रति वे अपना विचार इस रूप में व्यक्त करते हैं, पशु का जीवन नैतिकता से रहित होता है, किन्तु मनुष्य में नैतिकता की व्याप्ति अवश्य होनी चाहिए। नैतिकता का संबंध मानव जीवन की अभिव्यक्ति से है। मानव जीवन में नैतिक मूल्यों की आवश्यकता जरूरी है ताकि वह अपने परिवार के साथ-साथ सामाजिक दायित्व को निभा सके।

आध्यात्मिकता यानी अन्तरात्मा की आवाज के अनुरूप अपने कर्तव्यों का निर्वहन करना है। रवीन्द्रनाथ टैगोर क्षणिक और वासनामय सुख के विरोधी हैं। वे आध्यात्मिक और आत्मिक सुख को 'वास्तविक सुख' मानते हैं।

रवीन्द्रनाथ टैगोर पर कबीर, रज्जब और दादू दयाल, गौतमबुद्ध का प्रभाव देखा जा सकता है। उनके विचारों पर रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैतवाद का काफी प्रभाव रहा वे कहते हैं, अपने हृदय के द्वार बंद मत करो। मानव के अंदर प्रेम, ईश्वर का ही एक अंश है और प्रेम के विपरीत व्यवहार करना ईश्वर की अवहेलना करना है। प्रेम-भावना ही हमारी समस्त शक्तियों का पुंज है। यह एक ऐसा तत्व है जो सम्पूर्ण मानव जाति को जोड़ता है। संसार को बाह्य रूप से देखने पर अनेक अंतर, अंतर पटल पर आते हैं चाहे वह राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक भौगोलिक हो। किन्तु हम सबका हृदय पक्ष हमेशा एक होता है। इससे यह ज्ञात होता है कि सभी मानव चाहे वे किसी भी देश के निवासी हों, एक ही परमात्मा की संताने हैं और उनमें आन्तरिक भेदभाव नहीं हो सकता। ये सारे भेदभाव मानव द्वारा बनाए गए इसलिए सभी सम्प्रदायगत वैमनस्य, जातिगत भेदभाव, ऊँच-नीच की भावना, अप्राकृतिक है। 'काबुलीवाला' कहानी इसी मानवता को चरितार्थ करती है। जिसमें दो देशों की सीमा से परे विश्व बंधुत्व, मानव प्रेम को बताया गया है। काबुलीवाला काबुल (अफगानिस्तान) से व्यापार करने भारत आता है। वह किशमिश, बादाम बेचकर अपने परिवार का भरण-पोषण करता है। उसकी भी एक छोटी बेटी है जिसे छोड़कर वह यहाँ आया था। उसकी बेटी की छाया कहानी की पात्र बंगाली लड़की मिनी में दिखाई देती है। वह उसे स्नेहवश ढेर सारी वस्तुएँ देता है। यह उस अफगानी पिता का प्रेम है, जो अपनी मिनी को अफगान छोड़ आया था। इसमें दो पिता का प्रेम बताया है जिसको देश की लकीरों में बाँटा नहीं जा सकता।

'ईश्वर की वीणा में बहुत से तार हैं, कुछ लोहे के हैं, कुछ ताँबे के हैं परन्तु ईश्वर की वीणा में सोने

का तार केवल मनुष्य ही है।' (शान्ति निकेतन में 1931 में दिए गए एक भाषण का अंश।)

अर्थात् टैगोर मानवतावादी हैं वे मनुष्य को ही सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी मानते हैं, वे मानव को एक आध्यात्मिक रंग में भी रंग देते हैं। उनकी प्रसिद्ध कविता 'देश की माटी' देश के लोगों में आपसी एकता, सौहार्द रखने, मन से पवित्र होने की ईश्वर से प्रार्थना की है। ईश्वर हमारे देश की मिट्टी, जल, वायु तथा हमारे देश की वनस्पति सभी मधुरता, सरसता से परिपूर्ण हो जाएँ, हमारी आपसे यही कामना है, गुरुदेव कहते हैं देश में निवास करने वालों के तन और मन सब साफ व स्वच्छ हों। सभी में भाईचारे का समान रूप से भाव संचारित हो। हे परमात्मा आपसे हमारी यही कामना है।

कविता का अंश–

'देश की माटी देश का जल, हवा देश की,
देश के फल सरस बनें प्रभु सरस बनें।
देश के घर और देश के घाट, देश के वन और देश की बाट
सरस बनें प्रभु सरल बनें प्रभु।
देश के तन और देश के मन, देश के घर के भाई–बहन
विमल बनें प्रभु विमल बनें।'

यदि हम ईश्वर की शरण में जाना चाहते हैं तो हमें अहंकार, ईर्ष्या, द्वेष, बुराई आदि वे सभी कार्य त्यागने पड़ेंगे जो हमारे स्वार्थ से संबंधित होते हैं। हमें परोपकार में लगे रहना होगा तभी हम ईश्वर के सच्चे साधक बन सकते हैं। ईश्वर हर उस व्यक्ति के हृदय में वास करता है जो दूसरों का अहित, परनिन्दा, बेईमानी, गरीबों का शोषण, भेद–भावपूर्ण कटु व्यवहार नहीं करता, अपितु समाज की समरसता के लिए कार्य करता है। हमें परमात्मा का उसी प्रकार एहसास करना चाहिए जिस प्रकार हम गर्मी, सर्दी का एहसास करते हैं। परमात्मा से मानव को मिलाने वाला भाव प्रेम और आनन्द है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर का मानना था कि वर्तमान में राष्ट्रवाद लोगों के लिए राजनीति व व्यावसायिकता का पर्याय बन गया है। अनेक लोग राष्ट्रीयता का झूठा दिखावा कर एक अंधी और विचारहीन ताकत का निर्माण करते हैं। किसी एक धर्म या झण्डे के नीचे रहकर मानवता को दबाने की कोशिष करते हैं। भारतवासियों को वे समझाते हैं कि हमारा देष चाहे आर्थिक दृष्टि से पिछड़ जावे परंतु समतामूलक समाज, विश्व एकात्मकता, वसुधैव कुटुम्बकम् की धारणा हमेशा बनी रहे। ये विचार भारतीय समाज के लिए फलदायी सिद्ध होगा।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि रवींद्रनाथ टैगोर एक मानवतावादी, आत्मा की सत्यता व मानवीय धारणाओं की उपयोगिता पर बल देने वाले सच्चे साहित्य प्रहरी थे। इसलिए इन्हें नदी का कवि, गुरुदेव के उपनामों से भी जाना जाता है।

सम्पर्क : *इन्दौर (म.प्र.)*
मो. 9630787564

क्रांति कनाटे

वह एक : अनादि, अनंत, अवध्य...

24 जनवरी की सुबह लगभग 7 बजे पोर्ट ब्लेयर के सावरकर हवाई अड्डे पर पाँव रखा और लगा यहीं से पहले सीधे सेल्यूलर जेल जाकर वहाँ एक बार माथा टेक दें, वहाँ की पवित्र मिट्टी को सिर-माथे लगा लें फिर अंडमान की अपनी छः दिवसीय यात्रा का आरंभ करें परंतु यह संभव न था। पहले होटल पहुँच यात्रा की थकान दूर की और 'मानव संग्रहालय' तथा नौ सेना निर्मित 'समुद्रिका' संग्रहालय देख 'चिन्मय मिशन' में स्वामी शुद्धानंद जी से मिलकर अंतत; हम अपने गंतव्य को पहुँचे। मेरी सहयात्री थीं - सनावद से बड़ी बहन चारु, छोटी बहन ज्योति येवतीकर, इंदौर से सुमति देशपांडे और वड़ोदरा से सखियाँ वंदना भट्ट और जयश्री जोशी। लगभग तीन बजे का समय था और सामने था सेल्यूलर जेल का गेट, ऊपर हिंदी, अंग्रेजी में वे नाम लिखे देखे जो बचपन में और बचपन से अब तक जाने कितनी बार मन-मस्तिष्क में हलचल मचाते रहे हैं, यही है वह गेट जो चरमराते हुए तारीख 4 जुलाई 1911 को भी खुला था और 'एस.एस.महाराजा' जहाज से उतरकर भारी बेड़ियों से जकड़े नंगे पाँव एक लंबा पथरीला रास्ता पारकर विंदा इसमें दाखिल हुए थे, सिर पर बिस्तर, हाथ में थाली-कटोरी और गले में लटक रहा था एक बिल्ला जिस पर लिखा था 1960, यह उनकी जेल से रिहाई का वर्ष था। स्वातंत्र्यवीर के बिरुद से सुशोभित विनायक दामोदर सावरकर को मैं इकहरे 'विंदा' के नाम से पुकारती रही हूँ। बचपन में जब से मैंने उनके बारे में पहले-पहल अपने राष्ट्रभक्त पिता (अधिवक्ता, शांताराम येवतीकर, जिन्हें हम ही नहीं सब 'अण्णा' कहते थे) से जाना, सुना और फिर पढ़ा वे मेरे लिए विंदा हो गए।

मराठी में एक 'विंदा' करंदीकर भी हैं, प्रख्यात कवि। किसी बहुत अपने-से लगने वाले व्यक्ति को जब आप कोई अनौपचारिक नाम देते हैं तो वह और आत्मीय हो जाता है। मुझे नहीं याद मैंने कब, क्यों साहिर को 'बाबूजी' कहना आरंभ किया। एक बाबूजी तो मेरे और भी हैं गायक-संगीतकार सुधीर फड़के पर वे समस्त मराठीभाषियों के भी बाबूजी हैं।

तो यह है सेल्यूलर जेल, गुलामों की जमीन पर गुलामों के द्वारा खुद अपने ही लिए बनाई गई जेल, जिसे पूरा होने में एक दशक से अधिक का समय लगा। हिसाब लागत का है, भौगोलिक स्थिति का है, मजदूरों की संख्या का भी है परंतु उसमें उनका कितना लहू-पसीना बहा इसका कोई हिसाब नहीं है। इतिहास तो बस मुकुटों और सिंहासनों का हिसाब रखता है, वह वहाँ पहुँचे 'खास' का हिसाब रखता है, इतिहास के खाते भला कब मजदूरों के पाँव के छालों और हाथ के गट्टों तक पहुँचे हैं। भारी मन से हम गेट

से अंदर दाखिल हुए, दोनों ओर संग्रहालय हैं। हम एक में गए, जहाँ क्रांतिकारियों की तस्वीरें हैं, उनकी वस्तुओं को सहेज कर रखा है, उनके विषयक जानकारियाँ हैं, पर मन वहाँ ठहरता नहीं, सर्वाधिक बेचैन वंदना है। लगा, जेल देखने के लिए पर्याप्त समय चाहिए, ये सब तो बाद में देख लेंगे, पहले तो भारत की स्वतंत्रता का सबसे अमानवीय, सबसे नृशंस और सबसे लंबा इतिहास जहाँ बिना किसी कागज-कलम के लिखा गया उसे देखना था, उन दीवारों को छूना था जो मौन साक्षी रहीं क्रांतिकारियों द्वारा सालों-साल झेलीं गईं। मर्मांतक-मर्णांतक शारीरिक और मानसिक यातनाओं की, पग-पग पर हुए उनके अपमान और अवहेलना की और देशहित सहन की हुई पीड़ा की।

बाईं ओर 'अमर ज्योत' है और दाईं ओर लगी हैं कुर्सियाँ, शाम को होने वाले 'लाइट एंड साउंड शो' की। पीपल का वह पेड़ जो मेरे लिए अपरिचित नहीं था पर उससे पहले दिखा एक मानवीय पुतला जिसे एक फ्रेम पर चस्पा किया गया था, चेहरा एक ओर झुका हुआ तथा एक जरा-सी भूल पर कोड़े खाने को तत्पर खुली पीठ और भूल भी वह जिसे जेलर डेविड बारी और उसके वफादार पठान पेटी ऑफिसर मान लें। थोड़ा और दाएँ देखा तो 'फाँसी घर' था जिसमें गठान लगे तीन फंदों को अब किसी की प्रतीक्षा नहीं थी, तब भी बाहर लिखा था 'Mind Your Head'। फंदों के नीचे लकड़ी का तख्ता। कहते हैं, वहाँ से एक पेसेज़ था जो सीधे समुद्र में खुलता था, नारकीय जीवन जीने वाले क्रांतिकारियों को भला मरणोपरांत भी अग्नि-संस्कार क्यों नसीब हो, अंग्रेजों ने उनके शवों को सीधे जल तत्त्व को समर्पित किए जाने की व्यवस्था की थी। कुछ अधिकार मछलियों का भी तो बनता था अपने देशभक्तों की मृतदेह पर। इधर एक ओर कैदियों द्वारा किए गए काम समूर्त दर्शाए गए थे, नारियल कूटना, रस्सी बनाना, घानी में बैल के स्थान पर कैदियों का जोता जाना। सब दृश्यमान था। सिहरन हो रही थी, बरसों पहले इस दृश्य की वास्तविकता कितनी भयावह होगी, कल्पना भी नहीं की जा सकती। विंदा को यहाँ कभी राजनैतिक कैदी का दर्जा नहीं मिला, वे सामाजिक अपराधी माने गए। विद्यालय-महाविद्यालय का वह मेधावी छात्र, लंदन के 'ग्रेड इन' में बेरिस्टरी की पढ़ाई पूरी करने वाले विनायक दामोदर सावरकर ने यहाँ आते ही प्रतिदिन 20 नारियल कूटकर उसके छिलके निकालने का काम किया। जिन हाथों ने 2-3 साल पहले लेखनी पकड़ 'सत्तावन का स्वातंत्र्य समर' जैसा ऐतिहासिक ग्रंथ लिखा था, उन्हीं हाथों ने यहाँ 15 दिन कोल्हू चलाया और प्रतिदिन 30 पाउंड तेल निकालने का असाध्य लगने वाला श्रम भी साधा। उन निर्जीव पुतलों में अपने विंदा और अन्य क्रांतिकारियों को सजीव देख मैं अस्वस्थ होने लगी और उन कमरों से बाहर निकली। हम सबके चेहरों पर क्षोभ की लकीरें साफ झलक रही थीं। अब नि:शब्द हम जेल की मुख्य इमारत की ओर बढ़ने लगे।

कभी इस सेल्यूलर जेल में एक सेंट्रल टॉवर के आसपास सात विंग्स हुआ करते थे। हरेक में तीन मंजिलें, कुल जमा 696 कमरों में कैदियों के रुकने का ऐसा तगड़ा बंदोबस्त कि वे आपस में मिलना और बात करना तो दूर एक-दूसरे को देख तक न सकें। पहले भूकंप और फिर जापानियों के आक्रमण से नष्ट हुई इस इमारत में अब दो-तीन ही विंग्स हैं, सैलानियों के लिए एक ही खुला रखा हैं, सामने देखा पहली मंजिल पर मरम्मत का काम चल रहा था, दूसरी मंजिल पर जाने लगे तो दीवार पर संगमरमर में जड़े क्रांतिकारियों के नाम उनके राज्यों सहित लिखे थे, सर्वाधिक संख्या बंगाल से थी। मैंने अभी-अभी

सावरकर की 9 खंडों वाली आत्मकथा का दूसरा भाग पड़ा था जो मुख्यत: उनके काला-पानी की सजा पर केंद्रित था।

बहुत से परिचित नाम मुझे भीतर से बेचैन कर रहे थे। एक लंबा गलियारा और उसमें कतारबद्ध 4.5-2.7 मीटर के कमरे, 3 मीटर की ऊँचाई पर लगा एक रोशनदान। मेरे पाँव दूसरी मंजिल के अंतिम सेल की ओर बढ़ रहे थे पर मन पीछे की ओर भाग रहा था, आँखों के आगे एक झीना-सा, भीगा-सा पर्दा था और उसमें से मैं एक कोठरी में झाँकती हूँ तो लगता है इसी में भयावह शारीरिक यातनाओं के चलते अपने ही कपड़े फाड़कर गले में फंदा लगा इंदुभूषण राय झूल गए थे। यहीं जेलर बारी के अत्याचारों से और शारीरिक श्रम से तंग आकर उल्लस्कर दत्त ने पागल होने का अभिनय किया पर छुटकारा न मिला। मुझे पंजाब के परमानंद दिखे जिन्होंने अंतत: जेलर बारी को मारा तो सजा के तौर पर बाँधकर उन्हें 30 बेंतें यूँ लगाई गईं कि हर बेंत के साथ खून के फव्वारे उड़े, माँस बाहर निकला, और उन्हें बिना मरहम-पट्टी के कमरे में बंद कर दिया गया। मुझे चीन-जापान की यात्रा कर स्याम (थाई) के रास्ते रंगून गया, सैनिक क्रांति में पकड़ा गया पंजाबी ब्राह्मण रामरक्षा (रामरक्खा) दिखाई देता है, जिसने जनेऊ न पहने दिए जाने पर एक माह तक अन्न-त्याग किया अंतत; मर गया पर कैदियों को जनेऊ धारण का अधिकार अवश्य दिला गया।

एक कोठरी के आगे ज्योतिषचंद्र पाल के स्मरण भर से मुझे कँपकँपी छूटने लगती है, जर्मनी से आने वाले शस्त्रों की प्रतीक्षा में पाल बाबू पकड़े गए। कितना मुश्किल था उस छोटी-सी कोठरी में रात गुजारना, वहीं खाना खाओ जहाँ रखा होता है मल-मूत्र विसर्जन हेतु अपर्याप्त छोटा-सा एक मटका, पाल बाबू पागल हो गए, बर्हामपुर भेजे गए, पर मरते—मरते भी कहते गए 'पुनर्जन्म लूँगा और भारत आऊँगा।' मुझे वह पिंजरा नहीं दिखा पर पंजाब के शिक्षक चतरसिंह याद आए, जिन्हें उसमें सालों-साल बंद रखा गया था। इन सबकी राष्ट्रभक्ति को, उनके बलिदान को मन ही मन प्रणाम करते हुए मैं आगे बढ़ती हूँ, कहीं जेलर डेविड बारी का अट्टहास सुनाई देता है, तो कहीं भानसिंह की खुली पीठ पर कोड़े बरसते दिखते हैं और उनकी 'मारा! अरे भाइयो! मेरे को मारा' की चीखें सुनाई देती हैं और कहीं फाँसी के फंदे में झूलने से पहले क्रांतिकारियों ने ऊँची आवाज में लगाया 'वंदे मातरम' सुनाई देता है। इन सबका सामना तो मैं जैसे-तैसे कर भी लेती हूँ पर किसी कमरे से झाँकता 15-16 साल का वह किशोर नानी गोपाल मुझसे न देखा गया जिसने यहाँ अन्न और वस्त्र दोनों ही का त्याग किया, जो किसी के सँभाले न सँभला, किसी के मनाए न माना और आखिर दुनिया से चल बसा। मैं डर-सी जाती हूँ, तब भी ढूँढ़ती हूँ सफेद कनेर के पौधे, जिनकी जड़ें खाने से भयंकर बुखार आता था, गुंजे के पौधे पहचानने की कोशिश करती हूँ, जिसके बीज पीसकर खाने से रक्त की आँव हुआ करती थी, उस जड़ी-बूटी का नाम कहीं नहीं मिला जिसमें से निकाला धागा यदि किसी घाव में रख दो तो वह जख्म छ: माह नहीं भरता, कैदियों को इसकी जुगत के लिए भी तरीके निकालने होते थे। जेलर बारी के अत्याचारों के आगे यह सब कमतर लगता था यहाँ तक कि कैदी 'जमादार' होना भी स्वीकार कर लेते या पागल होने के अभिनय में वे अपना मल-मूत्र भी मुँह पर लगा लेते।

इन सबसे गुजरती हूँ तो गलियारे में सेल की दीवारों पर कैदियों को दंडित करने हेतु लगाए हुक

लटके दिखाई देते हैं। विंदा को यहाँ दो बार एक-एक सप्ताह की 'खड़ी हाथ बेड़ी' की सजा हुई थी। जिसके अंतर्गत मुँह दीवार की ओर रखकर कैदी के दोनों हाथों की कड़ियाँ ऊपर हुक से टाँग दी जाती हैं ऐसी कि वह दिन भर इसी अवस्था में खड़ा रहे। अब मन और अधिक तरल हो रहा है तो पाँव अधिक जड़ क्योंकि सामने है दूसरी मंजिल का अंतिम कमरा, कमरा नहीं कोठरी, ऊपर लिखा है 'सावरकर कोठरी'।

हमारी टोली ने अपने चप्पल-जूते बाहर निकाले, दरवाजे की धूल सर-माथे पर रखी, मन ऐसा द्रवित हुआ कि हमने एक-दूसरे के हाथ पकड़ लिए, अंदर जाने की एकदम हिम्मत न हुई। सामने लकड़ी का एक पटियानुमा तख्ता है उस पर था एक कंबल, वहाँ फ्रेम जड़ी तस्वीर में विंदा की एक झलक देखी और मन फिर पीछे चला गया। हाँ, कोई 45-48 वर्ष पूर्व, उज्जैन में पानदरीबा की ओर किसी स्कूल में एक रात गीतों भरी प्रस्तुति थी 'सावरकरायण' शीर्षक से। मैं नानी (सरस्वती कुलकर्णी) को लेकर गई थी, संभवत: पहला ही गीत था 'भाग्यवान हो भगूर गाँव ते नाशिक शेजारी/ जिथे जन्मले प्रभु सावरकर हिंदू कैवारी'। (यह अलग बात है कि सावरकर कभी खुद को 'प्रभु' कहलवाना पसंद न करते) ये पंक्तियाँ-मानस पटल पर कुछ यूँ अंकित हैं कि भुलाए नहीं भूलतीं। मेरी शिराओं में यूँ प्रवाहित हैं ये पंक्तियाँ कि मैं अक्सर अपने चिकित्सक पति शिवाजी से कहती हूँ, 'मेरी नब्ज रुकने से मेरी मौत तय करने में दुविधा हो तो कान के पास आकर पूछना, 'क्रांति! विंदा कहाँ पैदा हुए थे?' जो मैं भगूर न कहूँ तो पक्का समझना कि मैं भी चलती बनी।'

उस दहलीज पर बहुत कुछ याद आया। सनावद का अपना बड़ा-सा घर, बाहर के हॉल में अण्णा का ऑफिस, दीवारों पर 4-6 फ्रेम से झाँकते देशभक्तों के चेहरे। उन दिनों साप्ताहिक 'पाँचजन्य' के 'दीपावली विशेषांक' में प्रकाशित देशभक्तों के फोटो को हम सँभालकर रखते और बारी-बारी से विशेष तौर पर बनाई पोर्टेबल फ्रेम में जड़ते। यही है वह तेजस्वी चेहरा पर यहाँ इस घड़ी, इस काल-कोठरी में मैं उसका सामना नहीं कर पा रही थी, सो मन को इधर-उधर भटकाया। जिसे मैं तो भूल गई थी वह ज्योति ने यहाँ आने से पहले याद दिलाया था कि मेरे छात्र जीवन में जब इंदौर से प्रकाशित समाचार पत्र 'स्वदेश' में प्रति रविवार विनायक सावरकर की सचित्र जीवन-यात्रा किश्तों में प्रकाशित हुई थी तो मैंने उसके सारे भाग काटकर एक फाइल बनाई थी। कुछ रुकी, एक सिहरन होती है पूरे शरीर में, मन खिन्न हुआ या अवसाद से भर गया पता नहीं, अंदर जाकर खुद को सँभालने में, नॉर्मल करने में सबको थोड़ा समय लगा, उस कमरे में विंदा की उपस्थिति की तीव्र अनुभूति हुई, लगा वे कह रहे हों, 'जहाँ एकाकी ग्यारह वर्ष काटकर भी मैं न टूटा तुम आते ही धीरज खो बैठीं।' तय था कि इस सेल में सावरकर प्राणित राष्ट्र-वंदना 'जयोस्तुते श्रीमहंमंगले! शिवास्पदे शुभदे स्वतंत्रते भगवती! त्वामहम यशोयुतां वंदे'... गाया जाएगा।

जयश्री ने गाना आरंभ किया, ज्योति ने उसके स्वर में स्वर मिलाया, भारी मन से मैं, वंदना और सुमति चुपचाप बैठे, सिर झुकाए नमस्कार की मुद्रा में, हमेशा की तरह चारु ने मोबाइल पर रिकार्डिंग शुरू की, यह गाना उन दोनों ने पूरा तो किया पर छलकते आँसुओं से, हमने भी उसे सुना। भीगे नयनों से गाना रिकार्ड हुआ और चारु बाहर चली गई, वह अपनी भावनाओं को सदा नियंत्रित रखती है, मुझे उसने पहले ही हिदायत दे रखी थी, 'क्रांति, हम वहाँ अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने जा रहे हैं पर तुम ज्यादा इमोशनल

मत हो जाना।' पर यह संभव न हुआ हममें से कोई फफककर रो पड़ा तो कोई धीमे से। अच्छा हुआ कि तब तक कोई अन्य सैलानी वहाँ नहीं आए। हम कुछ व्यवस्थित हुए और उन दीवारों पर अपनी हथेलियाँ घुमाईं, जिन पर कभी विंदा ने कीलों और काँटों से 'कमला' महाकाव्य लिखा था। इस भयावह निविड़ एकांत में, दीवार को पन्ना बनाकर एक शृंगारिक महाकाव्य का सृजन वह महाकवि ही कर सकता था, पंक्तियाँ लिखीं, कंठस्थ कीं, फिर मिटा दीं, नई लिखीं। दस हजार से अधिक काव्य-पंक्तियों का सृजन जिस कोठरी में हुआ था उसे अंतिम प्रणाम कर हम बाहर निकले अवश्य, पर मन अभी भी 100 वर्ष पूर्व के अतीत में गोते लगा रहा था। यहाँ आने के कुछ माह बाद विंदा को पता चला कि बड़े भाई बाबा यानी गणेश भी यहीं कैद हैं। दोनों का मिलना तो और बाद में संभव हुआ। क्रांतिकारियों पर हुए असंख्य अत्याचारों की साक्षी इन दीवारों में 30-31 मई 1919 के वे कुल-जमा दो-सवा दो घंटों के स्वर्णिम क्षण भी तो कैद हैं। जब एक दशक से अधिक के जानलेवा उतार-चढ़ाव पारकर विंदा और बाबाराव अपने छोटे भाई बाळ से मिले, साथ थी विंदा की तपस्विनी पत्नी यमुनाबाई और बाळ यानी नारायण की पत्नी शांताबाई।

9 जून 1906 को मुंबई से 'एस.एस. पर्शिया' जहाज पर चढ़ते हुए जो विंदा ने अपने परिवार से विदा ली थी उसके बाद अंडमान लाने से पहले जब कुछ समय के लिए उन्हें मुंबई के डोंगरी कारावास में रखा गया था तब माई (यमुनाबाई) अपने भाई के साथ उन्हें मिलने आई थीं। विंदा जब लंदन में थे तब उनके पुत्र प्रभाकर का देहावसान हुआ था। कभी-कभी सोचती हूँ हमारे 33 कोटि देवताओं में भला कौन थे, वे सबसे निर्मम देवता और कितनी अशुभ थी वह घड़ी जब इस परिवार का भाग्य लिखा गया। सावरकर परिवार को जब अंडमान आकर इन दोनों भाइयों से मिलने की अनुमति मिलती है तो उसके ठीक तीन दिन पहले बाबाराव की पत्नी, विंदा की भाभी, भगिनी सम सखी, यशोदा का देहावसान हो जाता है।

हम तीसरी मंजिल की छत पर जाते हैं अथाह नीला समुद्र है, नयनाभिराम दृश्य है पर मन खिन्न हो जाता है यह सोचकर कि सालों-साल के कारावास में हमारे क्रांतिकारियों को इसे देखना कभी पल भर को भी नसीब न हुआ, उनकी दिनचर्या कोठरी से अपने काम तक ही सीमित रही। धीरे-धीरे हम सीढ़ियाँ उतरे, शाम 'लाइट एंड साउंड शो' देखकर हम बाहर निकले। याद आया इसी दरवाजे से अंततः 2 मई 1921 को 'सावरकर बंधु' भारत लौटने के लिए बाहर निकले थे। उस दिन भी ऐसा कड़ा बंदोबस्त किया गया था कि उनके साथी कैदी, उनके 11-13 वर्षों के आत्मीय उन्हें विदा करने बाहर न आ सके। फिर भी जाने कैसे अपनी जान पर खेलकर जमादार कुशाबा आया और विंदा के गले में चम्पा के ताजे फूलों का हार डालकर, उनके पाँव छूकर चला गया। भारी भीड़ में से जैसे-तैसे हमने अपना रास्ता बनाया, कुछ कदम चलकर फिर पलटकर आखिरी बार उस जेल को देखा, ऊपर तिरंगे को लहराता देखा और लो... फिर वे प्रखर राष्ट्रभक्त स्वातंत्र्यवीर विनायक दामोदर सावरकर याद आए, हाँ वे मेरे विंदा ही तो थे जिन्होंने स्वतंत्र भारत के इस तिरंगे में 'अशोक चक्र' का चिह्न लगाने का सुझाव दिया था, अहो भाग्य कि जिसे डॉ. राजेंद्रप्रसाद ने स्वीकार कर लिया था। मन का एक कोना कहीं रीता हो रहा था या कि भर रहा था मैं तय नहीं कर सकी।

***

इसके बाद की पाँच दिवसीय यात्रा में हम पहले 'शहीद' (हेवालॉक) टापू गए, वहाँ के आराम-दायक 'अमूल्या' होटल में हमने वहाँ के स्टॉफ के साथ 'गणतंत्र दिवस' मनाया, युवा कर्मचारियों का उत्साह देख बहुत अच्छा लगा, जिन्होंने सीमित साधनों में बस कुछ पत्नियों और फूल-पत्तों से प्रांगण में भारत का नक्शा बना लिया था। फिर 'स्वराज' (नील) द्वीप देखा, इन दोनों द्वीपों के सभी सुंदर समुद्र किनारे देखे, सीतापुर हो या लक्ष्मणपुर, भरतपुर हो या राधानगर, या हो हाथी टापू का किनारा... कहीं का सूर्योदय दर्शनीय है तो कहीं का सूर्यास्त, कहीं वाटर-स्पोर्ट्स का आनंद लिया तो कहीं कोरल देखने का। नेताजी सुभाषचंद्र बोस (रॉस) आइलेंड पर अंग्रेजों की शान-शौकत की निशानियाँ वे खंडहर भी देखे, जो कभी 'पूर्व का पेरिस के' नाम से प्रख्यात था। अंग्रेजों ने अपने लिए यहाँ सब सुख-सुविधाओं की व्यवस्था की थी। यहाँ वे रात गुजारते, और कैदियों को आरंभिक सालों में 'वाईपर आइलैंड' पर बेघर छोड़ दिया जाता। यहाँ संग्रहालय में उस बहादुर कैदी नं. 15557 शेर अली अफरीदी की तस्वीर को भी नमन किया जिसने 8 फरवरी 1872 की शाम वाइसराय लॉर्ड मेयो की चाकू से हत्या कर दी थी और जिसके एवज उसे 11 मार्च 1873 को वाईपर आइलैंड में फाँसी दी गई थी।

कैसी विडंबना है 'हॉप टाउन' में जिस जगह लॉर्ड मेयो को मारा गया था वहाँ लोहे की एक सलाख स्मृति चिह्न के रूप में गाड़ी गई है परंतु जगन्नाथ पुरी के महाराजा गजपति वीर किशोर सिंह देव का अंतिम संस्कार कहाँ हुआ हमें नहीं पता, बस इतना पता है कि क्रांतिकारियों की सहायता करने के अपराध में उन्हें यहाँ 1879 में लाया गया। अन्य कैदियों कि तरह उन्होंने भी यहाँ बेंत की मार सही, गेंहूँ पीसा, नारियल कूटकर तेल निकाला, अंग्रेजों के पाश्विक अत्याचार को वे एक माह भी न सह सके और काल का ग्रास बने। हम बारातांग भी गए वहाँ की 'लाइम स्टोन केव्ज' में बूँद-बूँद पानी टपकने और जम जाने से लाखों वर्षों में बनी प्राकृतिक मनभावन अतुलनीय आकृतियाँ देखीं, 'मड वोलकेनो' देखा। ये सब विस्तार से आप नेट पर जान/देख सकते हैं। विशेष लगा हर टापू का हरा-नीला स्वच्छ पारदर्शी समुद्र। वहाँ के भोले, नम्र और ईमानदार लोग, स्वच्छता के प्रति उनका आग्रह। वे इस बात पर बहुत खुश थे कि प्रधान मंत्री नरेंद्र मोदी ने 30 दिसंबर 2018 को अपनी अंडमान यात्रा के समय यहाँ के मूल अंग्रेजी नाम हटाकर नील, हेवलॉक तथा रॉड़ टापुओं को क्रमश: को 'स्वराज', 'शहीद' तथा 'नेताजी सुभाष चंद्र बोस' के नाम दिए। हमारी यह यात्रा 'एक्सपिरिएंस अंडमान्स' ने आयोजित की थी जिसकी पूरी टीम ने हमें शिकायत का कहीं कोई मौका नहीं दिया परंतु हाँ पोर्ट ब्लेयर की उन पक्की सड़कों पर ए.सी. टवेरा/ इनोवा में घूमते हुए मन उदास हो जाया करता था कि कभी जब ये रास्ते कँकरीले, पथरीले हुआ करते थे तब हमारे भारतीय कैदी अंग्रेज अधिकारियों को अपने कंधों पर गाड़ियों में ढोते थे और जरा-सी चूक पर मार भी खाते, उन कुछेक सहृदय अनाम अंग्रेजों के प्रति मन ही मन कृतज्ञता भी ज्ञापित की जिन्होंने इस सुविधा को नकार दिया था।

***

अंडमान यात्रा का उद्देश्य मात्र सेल्यूलर जेल और पर्यटन तक ही सीमित नहीं था। बड़ा मन था कि हम वहाँ कुछ उन लोगों से भी मिलें जिनके पूर्वज कभी यहाँ क्रांतिकारियों के नाते काला पानी की सजा काटने आए थे। इनमें से एक परिवार का पता लगा हमें चिन्मय मिशन से। स्वामी शुद्धानंद जी के सहयोगी

श्री रमेश पांडे के माध्यम से हम मिले श्री गौरीशंकर पांडे से। उनसे हमने जाना अंडमान का छुपा वह काला पन्ना जिसका साक्षी गौरीशंकर जी व उनका परिवार रहा है। 83 वर्षीय गौरीशंकर जी ने हमें हांफ्रीगंज हत्याकांड पूर्व-पीठिका का 'आँखों देखा हाल' सुनाया कि जब वे मात्र सात वर्ष के थे, कैसे उनके पिता प्रेमशंकर पांडे को अन्य 43 लोगों के साथ जापानी सेना ने न सिर्फ झूठे 'जासूसी केस' में फँसाया बल्कि उनकी निर्मम हत्या भी की तथा उनके मृतदेह भी परिवार वालों को न सौंपते हुए एक बड़े गड्ढे में गाड़ दिया। ये सभी 'इंडियन इंडिपेंडेंस लीग' की अंदमान शाखा के सदस्य थे। 30 जनवरी 1944 को 'बसंत पंचमी' के दिन जापानी फौज ने बाकायदा इन कैदियों के परिवारजनों को सुबह सेल्यूलर जेल बुलाया, जिस भयावह दृश्य को ये देखने वाले थे इसकी इनमें से किसी को भी, कोई कल्पना न थी। ये भोले अंदमानवासी तो अपने प्रियजनों के लिए नाश्ते की सामग्री भी ले कर गए थे, इन लोगों के देखते ही देखते जेल से एक-एककर कैदियों को निकालकर साथ लगे ट्रक में बिठाया गया। पहले कैदी का सम्मान बालक गौरीशंकर के पिता प्रेमशंकर पांडे को मिला। 'वंदे मातरम' तथा 'भारत माता की जय' के नारे लगाते हुए ये देशभक्त दूर ही से स्वजनों की अश्रुपूरित बिदा ले कर चल पड़े। गौरीशंकर जी आज भी वह दृश्य नहीं भूले जब 'इंडियन विमेन्स' की प्रेसिडेंट इशावती ने अपने दूसरे बेटे प्रताप नाथ को जेल से बाहर आते देखा तो वे खुद पर काबू न रख सकीं और रोते-रोते उन्होंने रास्ते पर पटक कर अपना सिर लहू-लुहान कर लिया।

ट्रक से इन्हें हांफ्रीगंज ले जाया गया जहाँ एक माह पहले ही मलाबार के कैदियों से एक खंदक तैयार करवा के रखी गई थी। पहले कैदियों की आँखों पर पट्टी बाँधी गई, उन्हें पाँच-पाँच की संख्या में पहले पिस्तौल से मारकर फिर बेनट से मारा गया, इस हृदयद्रावक दृश्य के फोटो लिए गए, कुछ कैदियों के शर्ट उतारे गए, जापानी फौज ने बड़ी मेहरबानी की जो दूसरे दिन एक पैकेट में प्रेमशंकर जी का रक्तरंजित शर्ट उनके घर भिजवाया। 30 ही की रात हांफ्रीगंज पुलिस स्टेशन में एक उत्सव मनाया गया। जिसमें ओङ्ग कबीले के स्त्री-पुरुषों ने अपने पारंपरिक नृत्य से जापानियों का मनोरंजन किया, प्रसिद्ध जापानी शराब 'साके' का सेवन हुआ। आज ये कबीला भी बहुत खुश था कि अंग्रेजों के 'भारतीय जासूस' मारे गए, नहीं जानते थे वे कि अंग्रेजों की तरह जापानियों ने भी हमें गुलाम से अधिक कुछ न समझा। कुछ वर्ष पूर्व इंटर नेट पर इस नरसंहार के फोटो देखकर शर्ट से गौरीशंकरजी की बड़ी बहन ने अपने पिता को पहचाना।

इससे पहले 30 मार्च 1943 को हुए पहले 'नारायण राव जासूसी कांड' में अबरडीन गाँव के दुगनाबाद किनारे पर सात भारतीय पुलिस अधिकारियों व डॉक्टर को जेल में अत्याधिक प्रताड़ित करने के बाद मार दिया गया था, हाँ तब जापानियों ने उन सातों की मृतदेह उनके परिवारवालों को सौंपने की उदारता अवश्य दर्शाई थी। हांफ्रीगंज तक आते-आते तो जापानी इतना भी न कर सके। जापानी फौजों का 23 मार्च 1942 से 9 अक्तूबर 1945 तक अंडमान पर कब्जा रहा। इस दरमियान उन्होंने बराए नाम इसे 'आजाद हिंद फौज' को सौंप दिया। बराए नाम इसलिए कि जापानियों ने कभी अंडमान के मूल निवासियों पर विश्वास नहीं किया। वे उन्हें सदा अंग्रेजों के जासूस ही समझते रहे। भले ही नेताजी ने पोर्ट ब्लेयर में 30 दिसंबर को 1943 में तिरंगा फहराया और वे सेल्यूलर जेल भी देखने गए पर उन्हें कैदियों से

न मिलने देने की सावधानी जापानी सेना द्वारा बरती गई। उन्हें 'इंडियन इंडिपेंडेंस लीग' के अध्यक्ष रामकृष्ण की ओर से 10.000 तथा 'इंडियन विमेन्स लीग' की अध्यक्ष इशावती की ओर से 5,000/- की धन राशि प्रदान की गई परंतु यह चालाकी भी बरती गई कि उन्हें जापानी फौज के अमानुषिक अत्याचार की कोई भनक तक न मिले।

गौरीशंकर जी के शब्दों में, '...जापानियों के कठोर कारावास में 'लीग' के सदस्य जेल की एकाकी कोठरी में क्षीण हो गए थे, वहाँ वे जापानियों के पाश्विक अत्याचार का शिकार हो रहे थे परिणामत: वे लगभग कंकाल की अवस्था को प्राप्त हो गए थे और शारीरिक रूप से अत्यंत दुर्बल हो गए थे। काश! नेताजी अपने 'ग्रेटर ईस्ट एशिया को-प्रोस्पेरिटी स्फियर' के मित्रों (वॉर फ्रेंड्स) का यह काम और 'लीग' के सदस्यों पर जापानियों के अत्याचार की यह पराकाष्ठा देखते कि जिसने उन्हें अंग्रेजों के जासूस होना स्वीकार करने को बाध्य किया तो इतिहास के पास कहने के लिए एक अलग कहानी होती और नियति ने एक अलग मोड़ लिया होता।' अत्याचार को मैं 'सापेक्ष वाद' की दृष्टि से नहीं देखती पर भाव-विह्वल होकर जब हमें गौरीशंकर जी ने बताया कि अंडमान पर अंग्रेजों से अधिक अमानवीय अत्याचार जापानियों ने उन तीन सालों में किए जब उनका यहाँ आधिपत्य रहा तब लगा सेल्यूलर जेल की कथा-व्यथा अभी पूरी नहीं हुई है। गौरीशंकर जी ने मुझे अंग्रेजी में लिखी 'संगीता पब्लिशिंग हाउस', पोर्ट ब्लेयर द्वारा प्रकाशित अपनी 3 पुस्तकें 'द सेल्यूलर जेल, नेशनल मेमोरियल' (प्रकाशन वर्ष 1887), 'वाइपर आइलैंड: द (रोज़) रोड ऑफ इंडियन पेनल सेटलमेंट' (1997) तथा 'पेट्रीयट्स ऑफ अंडमान इन ग्रीडम स्ट्रगल मूवमेंट 1042-45' (2000) भेंट कीं।

अंडमान के प्रामाणिक इतिहास को जानने के लिए इन्हें अवश्य पढ़ा जाना चाहिए। उनसे यह जानकर बहुत दु:ख हुआ कि प्रेमशंकर पांडे तथा उनके जैसे अन्य शहीदों को स्वतंत्र भारत में सरकार की ओर से कोई सहायता इस आधार पर न मिल सकी कि उनकी मृत्यु 'वॉर फ्रंट' पर नहीं हुई थी। भारत भूमि पर जापानियों के हाथों मारे गए 'इंडियन इंडिपेंडस लीग' तथा ' 'आजाद हिंद फौज' के सदस्यों को 'स्वतंत्रता सेनानी' की श्रेणी में न रखा जाना कैसी विडंबना है! गौरीशंकर जी पांडे के अनथक परिश्रम से तथा उनके जैसे अंडमान के देशभक्तों के अथाह प्रयास से अंतत: हांफ्रीगंज गाँव के उस स्थान पर जहाँ यह सामूहिक हत्याकांड किया गया था, पता लगाया गया और वहाँ एक स्मारक बनाया गया जिसे 'बलिदान वेदी' कहा जाता है। आप वहाँ उन सभी 44 हुतात्माओं के नाम पढ़ सकते हैं। गौरीशंकर जी के प्रयास से बनी 'हांफ्रीगंज मार्टिर्स मेमोरियल कमिटी' प्रति वर्ष वहाँ 30 जनवरी को 'बलिदान दिवस' मनाती है। दुर्भाग्यवश हमारी वापसी 30 जनवरी को अलस्सुबह होने से हम वहाँ जाने से वंचित रह गए। इस कमिटी को अब जनरल सेक्रेटरी के नाते गौरीशंकर जी के पौत्र जैविश शंकर पांडे देखते हैं। जिस भारी मन से हम सेल्यूलर जेल से धीरे-धीरे बाहर निकले थे उसी भारी मन से हम गौरीशंकर जी के घर की सीढ़ियाँ उतरे, अपने सारे नाम-अनाम शहीदों को मन ही मन प्रणाम करते।

***

लगा था अंडमान की यात्रा वहाँ से आकर पूरी हो गई है परंतु ऐसा न हुआ। कुछ आत्मीय जनों को शिकायत हुई, 'हमें क्यों नहीं कहा, हम जरूर चलते'? तो किसी ने कहा, 'हम दुबारा चलते' और इस

तीर्थ के दर्शन कर चुके कुछ स्वजनों ने द्रवित होकर अपने अनुभव मुझसे बाँटे। मात्र तीन की बानगी। हमारे परिवार में काका गोपाल येवतीकर (आजीवन प्रचारक, 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ') पहले व्यक्ति थे जो अंडमान गए, वहाँ जाकर उनके पाँव में ऐसा घाव हुआ कि पूरे 14 दिन रुकना पड़ा और सेल्यूलर जेल के पीछे बने अस्पताल में रोज ड्रेसिंग करवाने जाना पड़ा। बड़े मजे से वे कहते हैं, 'पूर्व जन्म में एक क्रांतिकारी के नाते सेल्यूलर जेल में 14 साल काटने की जो मेरी इच्छा अधूरी रह गई होगी वह यूँ पूरी हुई।' सावरकर 1941-42 में जब इंदौर आए थे तब 4-5 वर्षीय इसी गोपाल को साइकल पर बिठाकर बड़े भाई मधुसूदन येवतीकर (जो आगे जाकर 'बार असोसियेशन' इंदौर के अध्यक्ष भी रहे), 'टाउन हॉल' के पास सावरकर का भाषण सुनने ले गए थे, जब मुझे यह मालूम हुआ तो बड़ी गौरवानुभूति हुई कि मेरे परिवार में दो काका ऐसे हैं जिन्होंने विंदा को साक्षात देखा भी, सुना भी। इधर वड़ोदरा से हमारे पारिवारिक मित्र डॉक्टर सुभाष और चारुलता मोरे ने सेल्यूलर जेल के 'लाइट एंड साउंड शो' के बाद जब लोगों को खुशी से तालियाँ बजाते देखा तो वे अपने गुस्से पर काबू न कर सके। चारुलता जी ने तो दर्शकों को वहीं डपटकर यह कहते हुए उनकी गल्ती का एहसास करवा दिया कि, 'आप तालियाँ किस बात की बजा रहे हैं, यह समय तालियाँ बजाने का नहीं है, हमें तो यहाँ मौन रहना चाहिए।'

ग्वालियर की कुंदा जोगलेकर की तीव्र अनुभूति... मराठी से हिंदी में उन्हीं के द्वारा अनूदित कविता के एक अंश के रूप में प्रस्तुत है, शीर्षक है 'तुम हो सावरकर' -'पराधीन भारत में/ कालापानी के नाम से बदनाम/ अंडमान की इस कोठरी में/ तुम्हारे फोटो के सामने/ नतमस्तक हूँ मैं वीर सावरकर!/ आज यहाँ सदेह न सही/ लेकिन हो तुम/ यहीं कहीं आसपास/ कभी वातायन से झाँकते/ कभी बरामदे में चहलकदमी करते/ तो घूम रहे हो कभी एक निश्चित परिधि में/ कोल्हू के बैल की तरह आज भी.../ स्मारक बने कमरे की/ लिपी-पुती दीवारों में कैद हैं/ कोयले, काँच, पत्थर से उकेरी/ देशप्रेम में पगी तुम्हारी कविताएँ।/ रक्तवर्णी दिखाई पड़ता है/ समंदर भी/ क्रांतिकारियों की तमतमायी आँखों में/ उबलते लहू की मानिंद। / आज तुम्हें नमन करते, सलामी देते/ आँखें भर आई हैं सावरकर!/ कि कितना सहा होगा तब/ माँ भारती के पुजारियों ने.../ आज नि:शब्द हो तुम/ लेकिन कैदखाने की दीवारों को/ याद है इतिहास...मुँह जबानी/ जिसे वे सुनाती रहेंगीं...सदियों तलक/ आने वाली पीढ़ियों को/ बेशक नहीं था यश / कालखंड के नसीब में/ फिर भी तुम हारे नहीं हो सावरकर.../ युगों-युगों तक आसान नहीं होगा/ किसी के लिए भी/ आजादी की नींव पर उकेरे/ शिलालेखों का बदल पाना भूगोल।'

सावरकर को पढ़ने, जानने, समझने वाले उन्हें आत्मसात करने वाले एक अलग ही मानसिक धरातल पर जीते हैं। अंडमान से लौटी ही थी अत: इंदौर में भतीजी की शादी में जा न सकी परंतु भाई धनंजय मिठे ने कोई शिकायत नहीं की बल्कि 'द्वीपशिखा' शीर्षक से लिखा किसी का मराठी लेख मुझे फॉरवर्ड किया। यह नेताजी सुभाष चंद्र बोस टापू की रहवासी अनुराधा राव पर केंद्रित है, जिनके लगन भरे प्रयास से आज वहाँ अनेक पशु-पक्षी जीवित हैं। पशु-पक्षी अनुराधा की बोली खूब समझते हैं व उनका कहा मानते हैं। लेख में उद्धृत अनुराधा के शब्दों को ज्यों का त्यों टाँक रही हूँ, 'जब दुनिया का अंत होता है न, तब नई संस्कृति पनपती है, वे लोग जमीन खोदते हैं तो पिछली सभ्यता के कुछ बर्तन मिलते हैं, मूर्तियाँ मिलती हैं, उन्हीं को वे भगवान समझकर पूजने लगते हैं। जब हमारी संस्कृति खत्म हो जाएगी

ना तब भी आने वाली नस्ल ऐसी ही खुदाई करेगी। उस मिट्टी से पता है कौन-सा भगवान निकलेगा? उस माटी से निकलने वाले भगवान होंगे वीर विनायक दामोदर सावरकर। जब वह नस्ल सावरकर जी को भगवान मानना शुरू कर देगी, समझो बस तभी से धरती का स्वर्ग बनना शुरू हो जाएगा।'

विनायक दामोदर सावरकर मात्र क्रांतिकारी और साहित्यकार ही नहीं थे, वे भारत में विदेशी कपड़ों की पहली होली जलाने वाले थे, वे लिपि सुधारक थे, भाषा को 'क्रमांक', 'महापौर', 'निदेशन', 'नेपथ्य', 'वेषभूषा' 'दूरध्वनी', 'नभोवाणी', 'चित्रपट' जैसे अगणित शब्द देकर समृद्ध करने वाले सावरकर थे, 1931 में रत्नागिरि में देश का पहला 'पतित पावन मंदिर' बनाने वाले भी वही थे। 500 मंदिरों को अस्पृश्यों के लिए खोलने वाले, पूर्णत: वैज्ञानिक दृष्टि के समर्थक सावरकर, विश्वास और अंधविशवास में एक स्पष्ट रेखा खींचने वाले सावरकर और इन सबसे बढ़कर राष्ट्र की उन्नति को सर्वोपरि मानते हुए हिन्दुओं से 1925 के आसपास स्वयं को 'सप्त शृंखला' (वेदोक्तबंदी, व्यवसायबंदी, स्पर्शबंदी, सिंधुबंदी, शुद्धिबंदी, रोटीबंदी, बेटीबंदी) से मुक्त करने का आह्वान करने वाले समाज-सुधारक सावरकर के साथ हुई विधि की विडंबना तो देखिए कि स्वतंत्र भारत भी उन्हें उनका 'पावना' न दे सका।

'गाँधी हत्या' के नाम पर उनके साथ किया गया दुर्व्यवहार हमारे समय के सबसे बड़े कलंकों में से एक है। यह काल का क्रूर अट्टहास है कि पराधीन भारत में स्वतंत्रता के लिए 23 वर्ष कारावास में काटने वाले विनायक सावरकर को स्वतंत्र भारत में गाँधी जी की हत्या में झूठ का सहारा लेकर कारावास में रखा जाता है। दोनों बड़े भाइयों के लंबे कारावास में जिस 'बाळ' ने संयुक्त परिवार को सँभालते हुए देश में क्रांति की मशाल को जलाए रखा, विंदा के वे प्रिय छोटे भाई नारायण राव 'गाँधी हत्या' के समय भड़के दंगों के शिकार हुए और माथे पर लगी पत्थर की चोट से उबर न पाए तथा 19 अक्तूबर, 1949 को चल बसे, कहा जा सकता है कि वे स्वतंत्र भारत में 'मॉब लिंचिंग' के पहले शिकार थे और 13 वर्ष का लंबा कारावास काटने वाले बाबा गणेश राव तो 16 मार्च 1945 को स्वतंत्रता का सूर्योदय देखने से पहले ही देश-दुनिया को विदा कह गए। विदा ने आजीवन ये सारे दु:ख कैसे उठाए होंगे, हमारी कल्पना के परे है।

तब भी हाथ लगा काल सिद्ध एक सत्य यह है कि सावरकर नाम की धारा न कभी सुप्त होगी और न कभी लुप्त। यह धारा कभी विरल लगेगी जरूर पर यह निरंतर प्रवहमन है, रहेगी सदा यह अबाधित। विंदा की पुण्यतिथि (26 फरवरी) पर मेरे व्हाटसअप पर उनसे जुड़ी कितनी बातें और वीडियो क्लिपिंग्स रिश्तेदारों-परिचितों ने भेजीं। 'महिला दिवस' पर मराठीभाषियों ने तीनों सावरकर बंधुओं की पत्नियों यशोदा, यमुना और शांता के राष्ट्रप्रेम और त्याग को नमन करते हुए फोटो शेअर किए। इन तीनों तपस्विनियों के जीवन पर आधारित डॉ. शुभा साठे का हृदय-स्पर्शी उपन्यास है 'त्या तिघी...' जिसे पढ़ते-पढ़ते सुमति ने भाव-विभोर होकर मुझे फोन किया था। गुजराती में डॉ. शरद ठाकर के सावरकर केंद्रित उपन्यास 'सिंह पुरुष' की कीर्तिमान बिक्री हुई है।

विक्रम संपथ की अंग्रेजी पुस्तक 'सावरकर' : 'ए कोड फ्राम अ फरगोटन पास्ट' का पहला वृहत खंड आ चुका है, दूसरे की प्रतीक्षा है। उन जैसे लेखक जब कोई पूर्वाग्रह न रखते हुए लिखते हैं तो पुस्तक पठनीय हो जाती है। नारायण राव सावरकर की पोती विनता जोशी ने पिछले करीब 35 वर्षों में देश-विदेश में सावरकर के कृतित्त्व और साहित्य पर केंद्रित 1000 से अधिक मंचीय प्रस्तुतियाँ दी हैं। मराठी में तो यू

ट्यूब पर सावरकर पर प्रचुर सामग्री है ही परंतु हिंदी में भी कम नहीं है। सावरकर नाम की कीमिया ही कुछ ऐसी है कि लोग आपसे और जुड़ते चले जाते हैं। सावरकर की आत्मकथा के सारे खंड जहाँ एक ओर सुनंदा भावे मेरे लिए वाचनालय से लाने को तैयार है वही, 'विक्रम वाचनालय' की छाया मानेकर मेरे लिए अपने वाचनालय के द्वार खुले कर देती है। गंगा का अभिषेक तो गंगाजल ही से करना होता है। सावरकर को जब आजन्म कारावास हेतु लंदन से भारत लाया जा रहा था तब मार्सेल्स में पकड़े जाने पर 'एस.एस. मारिया' जहाज के केबिन में उन्होंने 'आत्म बल' शीर्षक से गीत लिखा था उसकी आरंभिक पंक्तियाँ उनके कालजयी व्यक्तित्व का सबसे बड़ा सत्य है।

'अनादि मी, अनंत मी, अवध्य मी भला,
मरिल रिपु जगती असा कवण जन्मला...'

संपर्क : *वड़ोदरा (गुजरात)*
मो. 9904238430

मनीषा बनर्जी

यात्रा : शहर विशाखापट्नम

आज भी मनुष्य वेश में उपस्थित उस देवदूत को याद कर हमारा पूरा परिवार कृतज्ञता से नतमस्तक हो उठता है। बात मई 2013 की है। शहर विशाखापट्नम, का एक पार्क जहाँ रोप-वे पर केबल कार में बैठकर पूरे शहर का दृश्यावलोकन किया जा सकता है।

मेरा परिवार भ्रमणप्रेमी होने के कारण प्राय: गर्मियों की छुट्टी में देशाटन के लिए निकल पड़ता है। मेरी नौ वर्षीय पुत्री की समुद्र देखने की इच्छा थी। इसलिए उस वर्ष हमने विशाखापट्नम जाने की योजना बनाई। मेरी माँ यहाँ बचपन में अपने माता-पिता के साथ आई थीं। शहर पहुँचने पर हमने एक पाँच सितारा होटल में 'चेक- इन' किया। यहाँ हम लोग तीन दिनों के लिए ठहरने वाले थे। घूमने-फिरने हेतु हमारे लिए एक कार की व्यवस्था होटल वालों की ओर से कर दी गई थी।

नाश्ते के बाद हम सब माँ के कहने पर स्वामी रामकृष्ण परमहंस के मंदिर गए। वहाँ कुछ देर बैठने पर हमें असीम शांति की अनुभूति हुई। सीढ़ियों से उतरते समय मेरे पिताजी ने समुद्र की लहरों की ओर इशारा करते हुए बताया कि यह शहर अपने साफ-सुथरे समुद्री तट, बंदरगाह, जलपोत तथा इस्पात निर्माण के लिए जाना जाता है। उन्होंने 1907 में बंगाली परिवार में जन्मी, इंग्लैंड में पढ़ी-लिखी प्रख्यात अभिनेत्री देविका रानी के बारे में बताया कि यहीं उनका जन्म हुआ। उनके पिता पेशे से डॉक्टर थे तथा सेना में लेफ्टिनेंट-कर्नल थे। उन्होंने अपने पति हिमांशु रॉय के साथ मिलकर 'बॉम्बे टॉकीज' नामक प्रसिद्ध फिल्म स्टूडियो की नींव रखी। दादा साहेब फाल्के पुरस्कार जो कि भारतीय सिने जगत का सबसे प्रतिष्ठित पुरस्कार है, उन्हें वर्ष 1969 में प्रदान किया गया। इस पुरस्कार से सम्मानित की जाने वाली प्रथम भारतीय महिला कलाकार देविका रानी ही हैं। हिंदी फिल्म जगत के दिग्गज कलाकार पृथ्वीराज कपूर के सुपर स्टार पुत्र व महान शोमैन राज कपूर को अपने स्टूडियो में बतौर कलाकार दो सौ रुपए मासिक वेतन व युसूफ खान नामक नवागंतुक युवक को दिलीप कुमार नाम और पहला फिल्मी ब्रेक देने का श्रेय भी देविका रानी को प्राप्त है। उनकी दमदार शख्सियत, अप्रतिम सौंदर्य व अभिनय क्षमता का लोहा पूरा सिने संसार आज भी मानता है। बॉलीवुड की वीनस मधुबाला को 'मधुबाला' का स्क्रीन नाम, 'दादामोनी' अशोक कुमार, बिमल रॉय तथा शक्ति सामंत जैसे नामी-गिरामी कलाकारों और निर्देशकों को भी उन्होंने ही अपने 'मिडास टच' से सुनहरा कामयाबी का मार्ग दिखाया।

इन रोचक बातों को सुनते हुए हम सैकत तट पर जा पहुँचे। किनारे की तरफ तेज़ गति से आती समुद्री लहर ने मुझे और मेरी बेटी को सराबोर कर दिया।

जलपोतों व कश्तियों का लहरों के साथ डूबना-उतरना देखने का आनंद अत्यंत रोमांचक था। हम लोग मंत्रमुग्ध हो कर अपलक अगाध जलराशि का लहराता हुआ सौंदर्य निहारते रहे। कुछ ही दूरी पर टीवी चैनल तथा फिल्म की शूटिंग भी चल रही थी। यह सब देखने-सुनने के उपरांत हम पास ही मौजूद एक वातानुकूलित रेस्त्रां में गर्मागर्म ग्रिल्ड व्यंजनों का आनंद लेने पहुँचे। वहाँ से निकल कर कार में बैठते वक्त ड्राइवर ने हमें बताया कि यहाँ से कुछ ही दूर एक पार्क है जिसके रोप-वे में बैठकर समूचे विशाखापट्नम शहर का विहंगावलोकन किया जा सकता है। यह सुनते ही मेरी बेटी मारे खुशी के झूम उठी। थोड़ी ही देर में हम उस पार्क में पहुँच गए। मेरे माता-पिता पार्क की हरी-हरी दूब पर जा बैठे।

उनकी अनिच्छा को मैं समझ गई। उन्हें बिना परेशान किए मैं और मेरी बेटी केबल कार में बैठकर घूमने के लिए चल पड़े। जाते-जाते मैंने सिर्फ टिकटों के लिए ही पैसे लिए और बाकी रुपए-पैसे, पर्स और नया मोबाइल अपनी माँ को दे दिए। न जाने क्यों मुझे मेरी छठी इंद्रिय ने ऐसा करने से टोका भी फिर भी उसे अनसुना कर हम दोनों माँ-बेटी टिकट लेकर केबल कार में जा बैठे।

जब हम केबल कार से दूसरे छोर पर जा उतरे तो वह जगह अनजानी सी लगी। हमारे सारे सहयात्री भी नदारद दिखे। करीब आधा-पौन घंटा पैदल भटकते हुए हम उस घुमावदार मोड़ पर पहुँचे जहाँ से बाहर निकलने का गेट था। हमें वहाँ एक बस दिखी जो ठसाठस भरी हुई थी। रास्ते पर इक्का-दुक्का लोग ही चल रहे थे।

यह देखकर मैं अंदर ही अंदर थोड़ा सा सहम गई। तभी हमारी विपरीत दिशा से एक सज्जन आते दिखे। उनकी वेशभूषा से ऐसा लग रहा था कि वे उसी पार्क के कर्मचारी होंगे। डूबते को तिनके का सहारा मिला। मैं अपनी बेटी का हाथ थामे उनके पास जा पहुँची। मैंने उन्हें हिंदी में समझाने की कोशिश की परंतु उन्हें पूरी बात समझ में ही नहीं आई। तब मैंने तेलुगु और अंग्रेज़ी मिश्रित भाषा में अपनी समस्या बताई। तुरंत उन्होंने अपनी जेब से कुछ रुपए निकाल कर मुझसे कुछ कहा जो मुझे ठीक से समझ में नहीं आया। मेरे रुपए लेने से इनकार करने पर उन्होंने हाथ हिलाकर मुझे रुकने का इशारा कर पास में खड़ी बस के ड्राइवर को कुछ निर्देश दिए। हमें बस में बैठ जाने का इशारा कर मेरे धन्यवाद पर थोड़ा सा सिर हिलाकर वे अपनी राह चल पड़े। बस के ड्राइवर और कंडक्टर ने खचाखच भरी बस में सामने की सीट पर बैठने की व्यवस्था कर दी। उस सज्जन के दिए हुए पैसों से हमने टिकटें लीं। ड्राइवर ने उस पार्क के सामने बस रोक दी जहाँ मेरे माता-पिता अधीर भाव से हमारी बाट जोह रहे थे। बस से उतरकर हम लोग दौड़ कर अपने माता-पिता से भरत मिलाप की मुद्रा में जा लिपटे।

थोड़ी देर बाद हम 'हैदराबाद हाउस' नामक होटल में लंच करने पहुँच गए। वहाँ ऑर्डर देने के बाद मेरी बेटी ने अपने नाना-नानी को सारी आपबीती सुनाई।

मेरे माता-पिता ने पूरा इतिवृत्तांत सुनने के उपरांत उस सज्जन के लिए आशीर्वाद की झड़ी लगा दी। उस सज्जन के अनुकरणीय व नि:स्वार्थ आचरण ने हमारा जीवन के प्रति पूरा दृष्टिकोण ही बदल कर रख दिया।

डॉ. पार्वती व्यास

खो गई बचपन की निडरता

बहुत ही सुहाना व प्यारा होता है बचपन। न छल कपट न जाति-पाति का भेद, न धन दौलत की आकांक्षा ही होती है। बचपन निश्छल होता है। न बीमारी का डर न मौत का डर।

सभी के बचपन की तरह मेरा भी बचपन था। बचपन में बाबूजी थे माताजी थीं, लेकिन अब न बाबूजी हैं न माताजी हैं न बचपन है। उम्र बढ़ने के साथ गंभीरता, संकोच, हार जीत की भावना, भय आदि बढ़ते चले जाते हैं और स्वयं के प्रति सतर्कता अधिक हावी हो जाती है। बचपन की भोली हरकतें, निडरता, अल्हड़पन और मस्ती न जाने कहाँ खो जाती है। बात तब की है जब मैं दूसरी या तीसरी कक्षा में पढ़ती थी माता-पिता के साथ छोटे-छोटे गाँवों में रहने का मौका मिलता रहा। उन दिनों गाँव में आज की तरह सुविधाओं का अभाव होता था, न बिजली, न नल, न ही घरों में शौचालय होते थे। हम जिस गाँव में रहते थे वहाँ एक नदी भी थी, जिसमें हम नहाया करते थे। ऊपर से कूदना, पानी के साथ बहना, जल क्रीड़ा करते रहना, थोड़ा बहुत तैरना भी आ गया था।

एक बार माता जी के साथ महेश्वर जाने का अवसर मिला। नर्मदा स्नान करने गये। बड़ी भारी नदी देखकर मैं खुश हो गई, मैंने आव देखा न ताव नर्मदा में छलाँग लगा दी। यह देखकर मेरी माता जी वह अन्य महिलाएँ चिंतित होकर शोर मचाने लगीं और पानी से बाहर निकलने का इशारा करने लगीं। हलचल देखकर एक छोटा सा राउंड लगा कर किनारे की पैढ़ियों (सीढ़ियों) पर आकर खड़ी हो गई। मेरी माता जी ने मुझे कसकर एक चाँटा मारा, मुझे कुछ समझ में नहीं आया कि हो क्या गया है। मैंने पूछा तो माँ ने बताया कि डूब जाती तो? मैंने कहा कि मैं अपने गाँव में भी तो नदी में कूद-कूद कर नहाती थी न। माँ ने समझाया, कि यह गाँव की नदी नहीं है, ये विशाल नर्मदा मैया हैं। पानी के अंदर बड़े-बड़े गड्ढे व गुफाएँ हैं जहाँ लोग फँस जाते हैं और मर जाते हैं। वापस नहीं आ पाते। उस समय तो इस डर का मुझ पर कोई असर नहीं हुआ, लेकिन आज सोचती हूँ कहाँ गई वह बचपन की निडरता, भोलापन, अब कहीं गहरे पानी में चाहे नर्मदा हो या कहीं तालाब हो बिल्कुल भी हिम्मत नहीं होती पैर भी डालने की। किनारे पर अब बैठकर नहाना ही पसंद करती हूँ। बचपन की यादें कभी-कभी चलचित्र की तरह दिमाग घूमने लगती हैं। बचपन में कई बच्चे एकत्रित होकर सड़क पर खड़े हो जाते और बस के आने का इंतजार करते। शर्त लगाये कि बस जब आए तब कौन कितनी बार चलती बस के सामने से इधर से उधर सड़क पार करता है। जो सबसे अधिक बार आती हुई बस के सामने से इधर-उधर होगा वह जीतेगा और सब उसे चाकलेट

खिलाएँगे। इस खतरनाक खेल को कुछ लोगों ने देख लिया, घर भी खबर पहुँच गई तो खूब मार पड़ी। लेकिन आज मुझे सड़क पार करने में भी बहुत डर लगता है। दोनों तरफ देखती हूँ कि कहीं वाहन तो नहीं आ रहे हैं यदि वाहन बहुत दूर है तो भी डर लगता है और जल्दी से दौड़कर सड़क पार करने का प्रयास करती हूँ। कहाँ गए बचपन की निडरता और चंचलता। गाँव में घरों के अंदर शौचालय नहीं होते थे। हम जहाँ रहते थे घर के पीछे खेत थे, खेतों में बड़े-बड़े पेड़ होते थे। एक दिन भरी दोपहरी में मुझे खेत में जाना पड़ा क्योंकि प्राकृतिक पुकार की जल्दी थी। मैं भागती गई और एक पेड़ की ठंडी छाँव में बैठ गई। पास में ही सूखे पत्तों का ढेर पड़ा था। मैंने देखा कि उन सूखे पत्तों के ढेर में कुछ सरसराहट हुई, धीरे-धीरे उसमें से एक काला मोटा लंबा साँप निकला। वह फन फैलाकर कुंडली मारकर बैठ गया। मेरी तरफ उसकी पीठ थी और दूसरी तरफ उसका मुँह था। इतने में एक महिला आई और उसने जैसे ही सर्प को देखा और जोर से चीखी, मुझसे कहा, छोरी भाग, बैठी है आराम से, सामने देख कितना बड़ा बैठा है दिखता नहीं क्या? मैंने कहा उसका मुँह तो उधर है, काकी डरने की क्या बात है।

आज भी मुझे उस घटना की याद आती है तो आश्चर्य होता है। अब मैं पैरों में बिना जूता-चप्पल पहने अँधेरे में घर के बाहर भी नहीं निकलती और घर के ओटले से नीचे सीढ़ियाँ उतरने में भी डरती हूँ कि पैर रखने से पहले इधर-उधर देखती हूँ कि कहीं कुछ जानवर नहीं बैठा है। अब कहीं परछाई देखकर भी साँप का भ्रम होने लगता है। मैं सोचती हूँ कहाँ गई वह बचपन की निडरता, साहस और मासूमियत। बचपन के दिन भी क्या दिन थे, उड़ते-फिरते तितली बन के। काश बचपन वापस आ जाए।

सम्पर्क : *खरगोन (म.प्र.)*
मो. 7974997795

संदीप सृजन

हिंदी साहित्य के इतिहास में तालाबंदी काल

हिंदी साहित्य के इतिहास पुनर्लेखन का समय एक बार फिर से निकट आता दिखाई दे रहा है। वीरगाथा काल से शुरू होकर भक्ति काल, रीति काल और आधुनिक काल तक लिखे गये इतिहास में अब तालाबंदी (लॉकडाउन) काल को जोड़ना पड़ेगा। लॉकडाउन का सही उपयोग किसी ने किया तो वह हिंदी के रचनाकारों ने किया। कोरोना को देश से भगाने के जितने प्रयास किए गये उनमें हिंदी के रचनाकारों ने भी अपने मोबाइल के माध्यम से सोशल मीडिया पर जमकर योगदान दिया। यहाँ तक की इस काल में कई नये रचनाकार भी पैदा हुए जिनको जीवनपर्यन्त साहित्य का 'स' और कविता का 'क' छू भी नहीं पाया था वे भी कोरोना की कृपा से कवि हो गये। और अपनी छुपी हुई प्रतिभा से साहित्य समाज को संक्रमित करने लगे।

जो अकवि घर में बैठे-बैठे अभी तक केवल अपनी रोजी-रोटी के चक्कर में सिर खपाया करते थे उनको लॉकडाउन में प्रसारित महाभारत बड़ी शिक्षा दे गई। लॉकडाउन उनके लिए कवि-शायर बनने का सुनहरा अवसर लेकर आया। हस्तिनापुर नरेशों की तरह कई कवि और लेखक इस दौरान ऐसे पैदा हुए जिन्होंने किसी शायर की ग़ज़ल के दो शेर लिए और किसी कवि की कविता की चार पंक्तियाँ लीं और जोड़-तोड़ कर एक नई कविता को जन्म दिया और अपनी संतान घोषित कर दिया।

लॉकडाउन काल से पहले तक जो लोग बैंक और बीमा कम्पनी से मुफ्त मिली डायरियों में लिख कर जिंदगी को गुलज़ार रखने का प्रयास करते थे, इस काल में फेसबुक, इंस्टाग्राम और व्हॉटसएप के माध्यम से अपनी तुरन्त जन्मी कविता का 'जातकर्म' संस्कार सम्पन्न करवाते नज़र आए। कुछ ऐसे लोग जिनको घरेलू और 'बाथरूम सिंगर' का खिताब प्राप्त था, वे लोग बच्चों के हाथ में मोबाइल पकड़ा कर अपनी प्रतिभा का सार्वजनिक प्रदर्शन करने लगे।

लॉकडाउन काल में वाचिक परम्परा के कवियों के हाथ से माया और राम दोनों निकल गये। रोज कवि सम्मेलन में पढ़ने वाले कवियों को एक कवि सम्मेलन भी नसीब नहीं हुआ। और तो और अपनी पहचान व प्रतिभा को बचाने के लिए बिना पेमेंट लिए रोज नये कपड़े पहन कर फेसबुक/ इंस्टाग्राम पर आना पड़ रहा है। मंच पर चुटकुलों को कविता कहने वालों को ये डर सताने लगा है कि लोगों को कहीं ये पता न चल जाए की कविता क्या होती है। अगर पता चल गया तो उनकी रोजी-रोटी के लाले पड़ जाएँगे।

बगैर जाम के जूम के माध्यम से झूमती हुई ऑनलाइन काव्य गोष्ठियों ने तो वैश्विक रिकॉर्ड तोड़ दिए हैं। कुछ कवियों ने तो बाकायदा रोज पाँच-छः गोष्ठियों में अपनी सक्रिय भागीदारी भी की और रोजाना बिस्किट की परमानेंट प्लेट सामने रखकर, घर की चाय पी कर, कभी अध्यक्ष तो, कभी अतिथि के रूप में अपनी प्यास बुझाई। आखिर पत्नी को कब तक नई रचना सुना-सुना कर पकाएँ। कुछ कवियों ने हड़बड़ाहट में इन कवि गोष्ठियों का रिकॉर्ड नहीं रखा, लेकिन जो कवि रिकार्ड रखने में होशियार हैं वे इतिहास लेखन से पहले गिनीज बुक और वर्ल्ड बुक वालों को प्रमाण पत्र प्रदान करने के लिए बाध्य करने की तैयारी कर रहे हैं। जो कि गिनीज बुक और वर्ल्ड बुक को सम्मान सहित उन्हें प्रदान करना भी पड़ेगा।

फेसबुक के माध्यम से ऑनलाइन आने वालों ने भी लॉकडाउन काल में कुछ कम योगदान नहीं दिया है। रोज किसी न किसी विषय को लेकर घंटों लंबी चर्चाएँ करते हैं। जो चर्चाएँ अभी तक बंद कमरे या किसी स्कूल के हाल में होती थी, वह सार्वजनिक होने लगी है। जिनके भाग्य में मुश्किल से अतिथियों सहित पाँच श्रोता होते थे, उन्हें अब बीस-पच्चीस श्रोता मिलने लगे जो कि पूर्वकाल से 4 गुना 5 गुना थे। और वह भी लाइक और पारम्परिक कमेंट्स के साथ। 'बहुत खूब', 'सुंदर रचना', 'बधाई सर', 'मजा आ गया आपको सुन कर' ऐसे कमेंट्स लिख कर चर्चा में अपनी उपस्थिती दर्ज करवाने और चर्चा को सफल बनाने वालों का योगदान भी अभूतपूर्व है। क्योंकि उनको भी जीवन में वह सब सुनने को मिल गया जिसे सुनना उन्होंने चाहा ही नहीं। हालाँकि फेसबुक पर श्रोता कम दर्शक अधिक होते हैं। पर जब घर बैठे गंगा घर आए तो कौन हाथ नहीं धोए। सर का सम्मान भी हो गया और संबंधों में भी एक बार फिर मिठास घुल गई।

जो 'कवि कम श्रोता' थे उनके लिए लॉकडाउन काल स्वर्णिम काल रहा। वे कवि जिनके भीतर कवि सम्मेलन के मंचों पर चढ़ने का कीड़ा तो सालों से कुलबुला रहा था, लेकिन उन्हें कोई बुला नहीं रहा था और न कोई जुगाड़ लग पा रहा था, ऐसे में यह अवसर उनके लिए तो परमात्मा के दिए किसी दिव्य वरदान से कम नहीं रहा। अपना फेसबुक/ इंस्टाग्राम एकाउंट, अपना मोबाइल, अपने शब्द, अपनी मर्जी, सब कुछ अपना यहाँ तक की उन्हें झेलने वाले भी अपने, यानी कि जो उनके फेसबुक/ इंस्टाग्राम मित्र हैं। यदि पहुँच थोड़ी लंबी हुई तो किसी समूह या किसी संस्था के बैनर तले बने फेसबुक/ इंस्टाग्राम पर काव्य पाठ कर अपनी भूख मिटा रहे हैं। कुछ ने तो लंबी कहानियाँ, व्यंग्य और उपन्यास के अंश तक 'लाइव आवर' में पढ़ डाले, चाहे उनके श्रोता दो या तीन रहे हों या अंत तक पहुँचते समय शून्य हो गये हों। लेकिन वर्तमान लॉकडाउन काल में वे फेसबुक लाइव आने वालों की लिस्ट में अपना नाम दर्ज करा गये और लॉकडाउन के इतिहास लेखकों के लिए सिर दर्द बन गये।

सम्पर्क : *उज्जैन (म.प्र.)*
मो. 9406649733

गोपाल माहेश्वरी

आह्वान

माँ तेरा जयगान करें।
हे भारती! आह्वान करें।।

हम शब्दब्रह्म से अर्थ, अर्थ से भाव, भाव से ज्ञान ग्रहण कर।
रचें अमर संगीत, मुखर हों गीत, गीत में प्रीत किरण भर।।
ऐसा सरस विधान करें।
माँ तेरा जयगान करें।।

जीवन में अनुराग, प्रेममय त्याग, राग मानवता गाएँ।
जहाँ विषमता पीर, दैन्य गंभीर, ले ममता धीर बँधाएँ।।
विष हर अमृत दान करें।
माँ तेरा जयगान करें।।

सुखमय बने समाज करे शुभकाज तू हृदय विराज ये वर दे।
मंगलमय हो देश, मातु! लवलेश, रहे न क्लेश, ये कर दे।।
हर मुख सुख मुस्कान भरें।
माँ तेरा जयगान करें।।

कलश

शीश पर नव रसों के कलश धर चली
रम रही है जो भारत हृदय की गली
यह विहरती हुई हिम शिखर तक फिरे
नाम हिन्दी है वाणी की यह लाड़ली

नागरी में सुचित्रित है सीधी सरल
चाल छन्दोमयी रूप अमृत तरल
काव्य की संगिनी नाट्य अभिरंगिणी
लेख कादम्बरी में कथा में सफल
भारती की प्रसादी ये मिश्री डली
नाम हिन्दी है वाणी की यह लाड़ली
शीशपर नवरसों के कलशधर चली
रम रही है जो भारतहृदय की गली

देववाणी से सद्गुण हैं पाए सहज
शुद्ध उच्चार हैं वर्णमाला जलज
जैसा लेखन है वाचन भी तद्रूप है
शुद्ध विज्ञानमय व्याकरण की उपज
श्रुति में मधुरा यथा बाँसुरी की नली
नाम हिन्दी है वाणी की यह लाड़ली
शीशपर नवरसों के कलश धर चली
रम रही है जो भारत हृदय की गली

सखी भाषाओं को अपने भूषण दिए
शब्द उपहार उनसे ले अपने किए
भावनीरा ये भाषा सुभाषा गुणी

यह कृपण कब तनिक भी किसी के लिए
है समावेशी संस्कार में यह ढली
नाम हिन्दी है वाणी की यह लाड़ली
शीशपर नवरसों के कलशधर चली
रम रही है जो भारत हृदय की गली

लोक में है छबीली छटा मोहिनी
इसकी शृंगार विविधा सरस सोहिनी
रूप धर बोलियों का लुभाती चले
इसमें गंगा की यमुना की सम्मोहिनी
है ये रेवा भी शिप्रा भी चंबल ललली
नाम हिन्दी है वाणी की है लाड़ली
शीशपर नवरसों के कलश धर चली
रम रही है जो भारत हृदय की गली

बोली सीता की राधा की मीरा की यह
इसकी सुषमा से शिक्षा की नूतन सुबह
गूँजे भारत के आँगन में यह मंगला
घर में बेटी बड़ी घूमती जिस तरह
इसमें ममता है भोली भली निश्छली
नाम हिन्दी है वाणी की ये लाड़ली
शीशपर नवरसों के कलश धर चली
रम रही है जो भारत हृदय की गली।

सम्पर्क : *इन्दौर (म.प्र.)*
मो. 9131528975

श्रीकान्त

लोकभाषा

हिन्दी सुशोभित है सदा से भारती के भाल पर।
उच्चार संशय से रहित, अविकल्प उच्च उछाल भर॥
अत्यन्त सरला, मृदुलता, माधुर्य अक्षय कोष है।
हिन्दी हमारी मातृभाषा, विश्व में निर्दोष है॥1॥

रूप अनगिन व्याप्त इसके, लोकभाषा-लोक बोली।
हो नहीं सकती कहीं इस भाँति मस्ती या ठिठोली॥
ब्रज, बनारस-भोजपुर, बुन्देल की बोली बुँदेली।
अवध की अवधी, निमाड़ी, मालवी, गोंड़ी, बघेली॥2॥

फिर, मारवाड़ी, बागड़ी, शेखावटी, ढूँढ़ाड़ी है।
मेवात-मेवाती बढ़ी, मेवाड़ की मेवाड़ी है॥
हरियाणवी, शिमलायनी, भाषा कुमाउँनी भी धनी।
गढ़वाल-गढ़वाली सहज, मन मोहिनी यह भी घनी॥3॥

हैं तमिल मलयालम यहाँ, फिर तेलुगु, कन्नड़ यहीं।
सिन्धी, मराठी, कोंकणी, कश्मीर-लद्दाखी कहीं॥
बाँगला, उड़िया, पंजाबी, असमिया, गुजराती यहीं।
हैं हिन्द की बेटी सभी ये बहन हिन्दी की सगीं॥4॥

हर क्षेत्र की हिन्दी निराली, एक यह वैशिष्ट्य है।
ढंग बोलने का भी निराला, मानवी अधिपत्य है॥

अभिरूप संस्कृत का कठिन, बन सरल हिन्दी आज है।
सो, भाल भारतवर्ष पर, हिन्दी तिलक पर्याप्त है॥5॥

अध्यात्म भक्ति समाज हित, हिन्दी सदा अभिमान की।
व्यापार की, व्यवहार की, भाषा-गणित-विज्ञान की॥
सब अलंकार, मुहावरे, लोकोक्तियाँ, रस, छन्द भी।
विज्ञान सम्मत व्याकरण, संस्कृत मधुर सम्बन्ध भी॥6॥

नाटक, उपन्यासिक, कथा, साहित्य भी विकसित हुआ।
अनुवाद वैदिक काल से, गीता पुराणों तक किया॥
पर, पद्य का इतिहास, हिन्दी में बहुत प्राचीन है।
संगीत के कारण मिली, गति ज्ञेय नित्य-नवीन है॥7॥

क्या प्रेम हिन्दी के लिए, अति दूर जन-मानस दिया।
रे! मातृभाषा थी न फिर भी, काम हिन्दी का किया॥
राजर्षि, गाँधीजी, तिलक, भावे-विनोबा और हों।
या वीर सावरकर, भगत, बंकिम, शरद सिरमौर हों॥8॥

पद सूरसागर सूर ने, मानसकथा तुलसी लिखी।
साखी, रमैनी, सबद कबिरा, भजन मीरा भी लिखी।
कामायनी जयशंकरी, फिर शक्ति पूजा राम की।
वह लिख निराला जी गये, अद्भुत कथा संग्राम की॥9॥

दिनकर, चतुर्वेदी लिखे, युग काल के अनुरूप ही।
चेतावनी, ललकार, फिर हुंकार के सत् रूप ही॥
है अमर इन सबका लिखा, अमरत्व हिन्दी के लिये।
यह साधना थी, साध्य भी, सो साधकों जैसे जिये॥10॥

हर इक दिशा इस देश की, हिन्दी सहज सब बोलतीं।
सच, प्रेम से आत्मीयता, माधुर्य का रस घोलतीं ॥
वे मानते हिन्दी सरल, सम्पर्क का आधार भी।
हिन्दी गलत होती नहीं, हिन्दी सहज स्वीकार भी॥11॥

सम्पर्क की भाषा कहें या राष्ट्र की भाषा कहें।
अन्तर भला इसमें कहाँ? जो अलग परिभाषा कहें॥
जैसा जिसे स्वीकार हो, उसको मिले अधिकार वो।
पर, सूत्र जोड़ें देश के, ऐसा सरल व्यवहार हो॥12॥

सम्पर्क : *दिल्ली*
मो. 9425092150

सागर कमल

संबंध

तुमने हमेशा मुझे
एक टूटी हुई
चप्पल की तरह निबाहा!

और मैंने?
तुम्हें अपनी लाइब्रेरी में रखी
किसी किताब की तरह चाहा!

मैं तुम्हारे लिए सदा ही
एक डस्टबिन से ज़्यादा
कुछ नहीं रहा
और तुम मेरे निकट
जैसे मोक्ष बनकर रहीं!

हमारा संबंध भी
नाजायज़ माँ-बाप की तरह था
कि न कोई दुश्मनी
न दोस्ती ही रही
गड़े हुए धन पर साँप की तरह था!

ये निबाहट,
ये चाहत
ऐसे रही कि जैसे

खट्टे दही में
थोड़ी मीठी खाँड
मिला दी जाए

जैसे बिनब्याही माँ
अपने बच्चे को
लिए जाए!

चाहे जो कुछ रहा हो
तुम्हारे लिए
पर मेरे लिए कमबख्त
प्रेम से कम कुछ भी नहीं!

सम्पर्क : *मेरठ (उ.प्र.)*
मो. 9756160288

शैलेश शुक्ला

कोरोना को हराएँ

संक्रमण से बचाव के सभी उपाय अपनाएँ
आओ हम सब मिलकर कोरोना को हराएँ।

कितना भी जरूरी हो, घर से बाहर न जाएँ
संक्रमण से खुद बचें और दूसरों को भी बचाएँ।

घर पर ही किताबें पढ़ें, टीवी देखें, नाचे-गाएँ
अपने परिवार के साथ अच्छा वक्त बिताएँ।

दोस्तों-रिश्तेदारों से कुछ समय तक दूरी बनाएँ
ईमेल करें, फोन करें औ' वीडियो चैट पर बतियाएँ।

बार-बार हाथ धोएँ और साफ-सफाई अपनाएँ
भूलकर भी हाथों को न अपने चेहरे पर लगाएँ।

सरकारी निर्देशों का पालन करें और करवाएँ
देशभक्ति का यह मौका बिल्कुल भी न गवाएँ।

इस मुश्किल वक्त में आपस के मतभेद भुलाएँ
विचारधारा चाहे जो हो, सब साथ आएँ।

कुछ समय आर्थिक तंगी खुशी-खुशी सह जाएँ
अर्थव्यवस्था से खुद बचें, दूसरों को भी बचाएँ।

बुखार खाँसी और सिर दर्द को बिल्कुल न छिपाएँ
कोरोना का लक्षण दिखे तुरंत जाँच करवाएँ।

तुलसी, नीम, गिलोय का उपयोग करें औ' करवाएँ
अपनी और परिजनों की प्रतिरोधी क्षमता बढ़ाएँ।

गाँव लौटते मजदूर

छोड़ कर अपना गाँव आए
सवार सपनों की नाव आए।

चूर हुए अब सब सपने
लौट चले हैं घर अपने।

शहर सभी बनाते ये
फिर भी छत न पाते ये।

बरसों-बरस श्रम किया
लगाकर पूरा दम किया।

खूँटी पर इच्छाएँ टाँगी थीं
बस रोटी-छत ही माँगी थी।

वो भी शहर ने दिया नहीं
अपनों सा कुछ किया नहीं।

जब मजबूरी थी भारी
और चारों ओर लाचारी।

तब मालिक ने छोड़ा साथ
न लगा कुछ उनके हाथ।

भूख से बच्चे रोते रहे
हर उम्मीद ये खोते रहे।

सोचा है ये थक हार-कर
अपने मन को मार-कर।

अब गाँव अपने जाएँगे
लौट कर शहर न आएँगे।

चले गये गाँव श्रमिक

गलियाँ हो गईं सूनी और घरों में पड़ गए ताले
चले गए अब गाँव श्रमिक सब इनमें रहने वाले।

बरसों-बरस जहाँ था अपना खून-पसीना बहाया
उस शहर ने इस संकट में कर दिया इन्हें पराया।

सेवा में वो जिनकी तत्पर रहते थे दिन-रात
पड़ी मुसीबत तो किसी ने सुनी न कोई बात।

एक तरफ तो थी भयंकर कोरोना महामारी
और उस पर भूख ने भी थी बढ़ाई लाचारी।

दाना नहीं रसोई में, न जेब बचा कोई पैसा
भूख से बच्चे रो रहे, दिन आया अब ऐसा।

निकल पड़े सड़कों पर, लेकर पेट वो खाली
लाचार गरीबी से बढ़कर होती न कोई गाली।

लेकर साइकल या पैदल ही, करने लगे सफर
चलते रहे दिन-रात, रख सामान सिर पर।

धूप-छाँव की फिक्र बिना, सफर रहा ये जारी
साथ किसी का मिला नहीं, संकट था ये भारी।

टीवी पर भी बस इनकी चर्चा ही हो पाती है
बहुतों को रास्ते में रोटी न मिल पाती है।

भूख-थकान से लड़ते-लड़ते, हो गए थे बेहाल
सड़कों पर ही सो जाते जब रुक जाती चाल।

चलते-चलते पैदल, घिस गए चप्पल-जूते
नाउम्मीदी में निकल पड़े, अपने ही बलबूते।

जैसे-तैसे, सब कुछ सहकर, पहुँच गए अब गाँव
मिल जाए रोजी-रोटी और अपनी छत की छाँव।

औज़ार करें पुकार

उल्टा ही पड़ा है
वो तसला कई दिनों से
नहीं की सवारी उसने
मजदूर के सिर की
सीधा होकर
मिट्टी, गारे से भर कर।

फावड़े को
इंतजार है
कि कई दिनों से
अलग पड़ा हुआ
उसका हत्था कब लगेगा
और कब
मारा जाएगा उसे
हत्थे को पकड़कर
मुँह के बल
मिट्टी खोदने के लिए
या मसाला बनाने के लिए
चुनाई का।

छेनी को
ये आराम
अब रास नहीं आ रहा

वो चाहती है
कि उसे मिले
चोट हथौड़े की
जोरदार, अपने सिर पर
और वो भेद दे पत्थर
भले ही हो जाए
खुद घायल

हथौड़े का रंग
चमकीले काले से
अब पीला होने लगा है
नहीं हो पा रहा
उसका व्यायाम
पत्थर पर करके चोट
चमक आता था
उसका चेहरा
और निखर जाता था
उसका रंग।

कई दिनों से
ये सब
और इनके सब साथी
कर रहे पुकार
है सबको इंतजार
कब आएँगे कामगार?
कब आएँगे कामगार?

सम्पर्क : *कर्नाटक*
मो. 8759411563

सुषमा यदुवंशी

पाती

लिखी प्यार की पाती तुमको, लिखा न उस पर नाम रे।
लिखा न उस पर पता ठिकाना
लिखा न उस पर गाँव रे
कैसे पहुँचाऊँ तुम तक
अपने मन के बोल रे
कहाँ ढूँढूँ अनजान तुम्हें
बहुत बड़ा भूगोल रे
कहाँ पूछूँ या ढिंढोरा पीटूँ
क्या होगा परिणाम रे
लिखी प्यार की पाती तुमको लिखा न उस पर नाम रे

धरती माँ बोल रही

बोल रहा गगन विशाल।
बोल रही दसों दिशाएँ,
कहाँ प्रेम और विश्वास?
छू ले जो अंतर्मन,
कहाँ गीता का ज्ञान?
खोज रही प्रकृति विवश हो, खोई हुई सीता को..

लूट रहे जाने अनजाने
अनगिनत सुखद सुहाग
छूट नहीं रहे गहरे कलंकों के दाग
माँग रहीं ऋतुएँ घुँघट खोल गीत प्रीत मन के बोल

दीप जले, सजी आरती और सजी रँगोली
अर्धरात्रि सजग दृष्टि तृष्णा सँजोली।
मेरे मन की आई होली
रंगों से निचोड़ कर मैं भी सब की हो ली...

बेटियाँ...

कुलत्त्रयम् पुनाति इति पुत्री... परम श्रद्धा वैभव सी।
कोमल-निर्दोष...
आत्म अभिव्यक्ति सी।
मनु -शतरूपा...
मानवीय सृष्टि की उत्पत्ति
देवहुति सी।
शक्ति रूपा माँ शाकंभरी...
सीता, राधा, गौरी सी।
निर्मात्री जीवन चेतना की... गौरी, गय्या, गंगा सी।
सांस्कृतिक-आध्यात्मिक विरासत...
जीवन रेखा सी।

सम्पर्क : *बालाघाट (म.प्र.)*
मो. 8793360333

रश्मि पंडित

मेल होने से तो रहा

वो ठहरा ऊँचे गगन का चंद्र,
मैं ठहरी वसुंधरा की बहती नदी,
मेल होने से तो रहा।

उसका रूप दिखता मेरे अंतर में,
परंतु वो देखता चाँदनी के तन में,
मेल होने से तो रहा?

वह निशाचर,
मैं चराचर के बीच बहने वाली
वह तारों के बीच रहने वाला
मैं रेतीले रेगिस्तानों में तपने वाली
मेल होने से तो रहा।

वो घटता-बढ़ता हर दिन,
मैं बहती जाती निशदिन,
मेल होने से तो रहा।

उसके चारों ओर निराली छटा,
शीतल ठंडक देने वाली घटा,
मैं कल-कल, छल-छल शोर करती
पहाड़ों और जंगलों में खपती,
मेल होने से तो रहा।

वो ठहरा ऊँचे गगन का
मैं ठहरी नीचे हवन की
मेल होने से तो रहा।

समर्पण

तुम समंदर, मैं नदी बन
तुममें समा जाऊँगी।
तुम सीप, मैं मोती बन
लहरों के साथ इतराऊँगी।
तुम आकाश, मैं धरती बन,
नए फूल खिलाऊँगी।
तुम शिव बन समाधि धरो
मैं गौरी बन तुम्हें जगाऊँगी।
तुम कृष्ण बन मुरली धुन छेड़ो
मैं राधा बन संग तुम्हारे गाऊँगी।
और सुनो! तुम्हारी मर्यादा हेतु,
कहो तो मैं सीता बन
धरती में समा जाऊँगी।
तुम समंदर, मैं नदी बन
तुममें खो जाऊँगी।

मसला

मसला यूँ सुलझा,
उनके और मेरे बीच का कि
तुम जीते मैं हारी।
तुम बड़े और मैं छोटी ही न्यारी?
तुम बुद्धिमान और मैं मूर्ख ही प्यारी,
पर रखो याद की तुम्हारी सृष्टि को
कोख में जगह मैं ही देती हूँ।

तुम्हारे पौरुष को पहचान भी मैं ही देती हूँ।
तुम चलाते होगे सृष्टि को अपनी अँगुली पर,
लेकिन मेरी अँगुली पर तो तुम ही नाचते हो,
गर क्रोध में आऊँ तो मेरे पैरों के नीचे तुम्हीं तो होते हो?
तुम्हारी खामोश दीवारों पर मैं ही मुस्कान हूँ, और

तुम्हारी जीत की परछाईं मैं ही हूँ।
तुम मर्यादा पुरुषोत्तम हो तो सुनो!
तुम्हारी अयोध्या की जानकी मैं ही हूँ।

उपहार

सुनो देना चाहते हो यदि मुझे,
तुम उपहार में देना मुझे
अपनी निश्छल हँसी
मैं थोड़ा सा बचपन जी लूँगी।
तुम उपहार में देना मुझे अपनी
ढेरों किताबें
मैं हर पन्ने पर तुम्हें महसूस कर लूँगी।
और
तुम देना मुझे अपनी प्रीत
मैं अपने हृदय में रख लूँगी।
तुम देना मुझे अपना समय
मैं तुमसे जी भर बतिया लूँगी।
और
तुम देना मुझे अपना एकांत
मैं मौन हो लूँगी।
तुम देना अपनी कल्पना
मैं उड़ान भर लूँगी।
तुम देना मुझे अपना अतीत
मैं दुशाला बना ओढ़ लूँगी।
देना तुम मुझे अपनी सोच,
तुम्हारे मन की थाह ले आऊँगी।
तुम देना अपना हाथ
मैं एक सदी जी लूँगी।
बस यही कुछ उपहार देना
यदि देना चाहते हो तो।

सम्पर्क : *रतलाम (म.प्र.)*
मो. 7389503301

वंदना पाण्डेय

भीष्म प्रतिज्ञा

आज कौन नहीं जानता भीष्म प्रतिज्ञा को।
इतनी भीषण, इतनी कठोर।
क्या इस तरह की प्रतिज्ञा करने के पहले,
कोई सोचता होगा उसका आगा पीछा।
या क्षणिक आवेश में हो जाता है यह सब।
प्रतिज्ञा लेते समय,
केवल और केवल
वह एक पल ही जिम्मेदार होता है।
पिता ने प्रतिज्ञा की।
पुत्रों के विषय में कुछ न पूछने की।
किंतु आखिरकार आत्मा डोल ही गई।
अपने सात पुत्रों के बिछोह से।
और पूछते ही माता समा गई,
गंगा की गहराई में।
एक दुधमुँहे बालक को हाथों में सौंप कर।
क्या मिला ऐसी प्रतिज्ञा से?
पत्नी के सान्निध्य का सुख?
लेकिन क्या वह पुत्रों के वियोग से बड़ा था?
लेकिन वह भी तो नहीं पाया पूरी तरह।
पुत्रों का बिछोह हुआ पत्नी का भी।
और फिर एक दिन इस बालक,

गंगापुत्र ने भी,
एक भीषण प्रतिज्ञा कर डाली।
अटल रहा जीवन भर जिस पर।
अपनी आँखों के सामने।
इतने बड़े साम्राज्य को।
तिल-तिल मिटते देखा।
रुग्ण, अनीतिकर, अधर्मी,
शासन देखा।
ढहते संस्कार और टूटती मर्यादाएँ देखीं।
न बंधे होते प्रतिज्ञा मैं, जड़ता में,
तो न देखना पड़ता पांडू सा पीत शासन।
न देखना पड़ता अंधा अधर्मी शासन।
भरे दरबार में अमर्यादित नंगा नाच।
अपने ही पुत्र-पोत्रों का महाविनाश।
चरमराते सत्ता के शिखर।
जहाँ
ऐसा सुदृढ़!
ऐसा दृढ़ प्रतिज्ञ!
उत्तराधिकारी हो।
उस देश को भुगतना पड़ा,
महाभारत सा महाविनाश!!!
इस तरह की प्रतिज्ञायें,
जो बिना सोचे समझे,
बस कर ली जाती हैं,
भावनाओं के प्रवाह में।
प्रतिकार का बवंडर ले आती हैं।
ले आती हैं महाविनाश।
महाभारत की तरह।
जहाँ फिर कुछ नहीं बचता।
सदियाँ चुक जाती हैं।
पीढ़ियाँ मिट जाती हैं।
रह जाते हैं अवशेष
बस उस प्रतिज्ञा के!!!!

जरूरतें

कभी लगता है कि जरूरतें हों कम से कम,
लगता इसलिए है कि यही सिखाया जाता है।
पिता और परंपरा यही कहती रही,
उतने ही पैर फैलाओ जितनी चादर हो।
लेकिन समय के इस चक्र ने,
या समय के इस दुष्चक्र ने,
नई पीढ़ी को एक नया ज्ञान दिया!!!
पहले पैर फैला लो!!!
उसके हिसाब से चादर बड़ी कर लो।
इस जरूरत के लिए,
जाने कितने सपने देखे जाते हैं!
और जाने किस किस के सपने तोड़े जाते हैं!
जाने कितनी जोड़-तोड़ की जाती है!
और जाने कितने समझौते किए जाते हैं!
अपने आप से भी और अपनी जिम्मेदारियों से भी।
फिर नहीं दिखता इन आँखों को,
धीरे धीरे ढलते जाते,
मूल्यों की सरसराहट।
समाज और परंपरा ने सौंपी थी जो जवाबदारी!
वह भी स्वहित के बवंडर में,
कहां खो जाती है?
पता ही नहीं चलता।
और जो मिलता है!!!
इसकी कीमत इतनी बड़ी होती है!!!
समझ नहीं आता,
कि जरूरतें पूरी हुई हैं?
या
इस कीमत पर इसकी जरूरत कभी थी ही नहीं!!!!!

डर

कहाँ से आता है डर?
दिमाग में, दिलों में,
और सर्वत्र छा जाता है।
कोई विचार जो चिंता हो,
डर में बदल जाता है।
मँडराने लगता है दिलो-दिमाग पर।
अनहोनी के प्रति आशंकित दिल,
धड़कता रहता है शरीर में,
और मन मनाता रहता है देव।
लोग कहते हैं चिंता बुरी बात है।
चिंता स्वयं की तो बहुत बाद में होती है।
सबसे पहले परिवार,
माता-पिता,
भाई-बहन,
पुत्र-पुत्रियाँ,
सामने आकर खड़े हो जाते हैं।
इन सब के बिना जीवन की कल्पना,
सहज नहीं होती।
इनके जीवन का कोई भी कष्ट असहनीय होता है
यह विचार तहे दिल तक हिला देता है,
कि हमारे सामने या हमारे बाद,
जो इस दुनिया में आए,
उन्हें कैसे विदा कर दें!!!
मृत्यु तो अवश्यंभावी सच है।
लेकिन यह प्यार,
यह स्नेह भी तो अवश्यंभावी सच है।

सम्पर्क : *भोपाल (म.प्र.)*
मो. 9926265007

टीकम चन्दर ढोडरिया

दोहे

याद किया शायद कहीं, चली कहीं तो बात।
रह-रह कर आयी मुझे, हिचकी सारी रात।।

तुच्छ अहं की तुष्टि में, रहे सभी हम व्यस्त।
रिश्ते सब होते गये, एक-एक कर ध्वस्त।।

आओ तुरपाई करें, दे लें थोड़ी धूप।
महकेंगे रिश्ते पुनः, पाकर उजला रूप।।

युग बीते पर आज भी, चलते शकुनी दाँव।
सहना पड़ते भीष्म को, अपनों के ही घाव।।

रंग-मंच के पात्र हम, अभिनय अपना काम।
गिरते ही फिर यवनिका, जाना प्रभु के धाम।।

चूल्हा चक्की पेवला, पनघट पानी प्यास।
अलगनियों पर है टँगा, क्या अब भी उल्लास।।

चौपालों के बतरसे, धूनी का परिहास।
दिल की कोटर में छिपा, भरता अन्तिम साँस।।

लगे खींचने हम सखे, जब से वसुधा चीर।
नग्न हुयी झीलें सभी, सूखा नदिया नीर।।

जाता हूँ थक हार कर, जब भी अपने गाँव।
दुलराने लगती मुझे, बूढ़े बड़ की छाँव।।

साँकल खुली अतीत की, बिखरे मिले गुलाब।
लिपटे थे जिनमें कभी, मीठे-मीठे ख्वाब।।

गया खोजने गाँव में, बचपन का परिवेश।
कोने में दुबके मिले, यादों के अवशेष।।

महका मन का आँगना, कई दिनों के बाद।
खुशबू से भीगी हुयी, आयी उनकी याद।।

आज अचानक साँझ को, ऐसे बरसा मेह।
कंचनवर्णी देह में, लगा उमगने नेह।।

दूध कटोरा लोरियाँ, चंदा परियाँ लाल।
जाने क्या-क्या दे गया, तेरा एक ख़्याल।।

मैंने तो यह सोचकर, चाहा तुझको यार।
पिघलेगा पाषाण भी, पाकर मेरा प्यार।।

किसने चुम्बन जड़ दिया, हुयी शर्म से लाल।
आयी धोने झील में, संध्या अपने गाल।।

रजनी ने नभ पर लिखे, तारों से जज़्बात।
बाँचेंगे मिल बैठ कर, आना छत पर रात।।

उन्हें बहाकर तोड़ दूँ, मैं कैसे सम्बन्ध।
हर आँसू में बन्द है, तेरी ही प्रिय गन्ध।।

होना ही था आपको, देख उसे बेनूर।
दर्पण था वह भी भला, चमचा नहीं हुजूर।।

माना सूखे वृक्ष हैं, सूख गयी है खाल।
कभी बनाओ औषधी, लेना इन्हें उबाल।।

बाहर की हो काष्ठता, या भीतर का हो मोम।
कर देते परिवार पर, बाबूजी सब होम।।

अँगड़ाई लेती गजल, दोहे करते बात।
लेता हूँ जब हाथ में, कागज कलम दवात।।

बैठे-बैठे गिन रहा, दिवस महीने साल।
बाप मरे तो हाथ में, आये सारा माल।।

बादल ने कुछ इस तरह, किया उसे बदनाम।
उमड़-घुमड़ लिखता रहा, नभ में उसका नाम।

सकुचाई लेटी रही, कहती किसे पीर।
मेघों ने खींची बहुत, नदिया की तस्वीर।।

हवा चली आँचल उड़ा, उघड़ा कोमल गात।
निरख-निरख बादल उसे, बरसा सारी रात।।

कुछ ऐसी तरतीब से, बरसी जल की धार।
धानी चूनर पर दिखा, लिखा प्यार ही प्यार।।

ऐसी क्या तासीर है, मेघा तुझमें यार।
खारे जल को भी करे, मीठा तू हर बार।।

नापी जब संतोष ने, रात जगत की पीर।
निर्धन सब संतृप्त थे, भूखे मिले अमीर।।

बिजुरी चमकी या प्रिये, खुली तुम्हारी देह।
मोती टूटे हार के, या बरसा है मेह।।

कदम बढ़ाना बाद में, करना पूर्व विचार।
वक्त नहीं देता कभी, संशोधन अधिकार।।

रहा कुँआरा जब तलक, माँ के था वह साथ।
हुआ पराया थामते, क्यों पत्नी का हाथ।।

सम्पर्क : *बारां (राजस्थान)*
मो. 941382697

डॉ. शोभा जैन

मकान बिकाऊ है...

कल राह से गुजरते हुए
नजर पड़ी शीशम की लकड़ी से बने
पुराने से सुंदर दरवाजे पर
जिस पर तराशी हुई नक्काशी,
पीतल के गोल कड़ों को खींचते कुछ बच्चे
बार-बार उसे खोल बंद कर रहे थे
कुछ देर ठहर गई, और देखा
उस पट्टिका की ओर
जिस पर लिखा था-
'यह मकान बिकाऊ है'

कुछ अनमने मन से भीतर गई
ओटले पर खेलते बच्चे
मुझे आता देख कुछ सतर्क हुए
मेरे नजदीक आते ही छँट गये थे
पूछा-आपको मकान देखना हैं?
मैंने कहा-हाँ, किसका है यह
वे बोले- दीवान जी का
मैं सीधे भीतर चली गई
दबी हुई दरीचों में,

रहने वालों की यादों को ताज़ा करते,
उस मकान की महक पुश्तैनी थी
मुझे लगा जीवन के कौतूहल में
जोड़ घटाव, भ्रम संशय संदेह में
कुछ तो मजबूरियाँ रही होंगी
नई इमारतों में जाने की आतुरता भी
जो बिकाऊ हो गया यह 'मकान' बनकर
जाने कितनी सुनहरी धूप देखी होगी
कभी अनमनी-सी शाम भी

तन्हा रातों में भी गूँजती होंगी
किलकारियाँ बचपन की
किसी कोने में जन्मा होगा प्रेम
तो वात्सल्य का विस्तार भी
चौके में बनी होगी जिरात की रसोई
आस पड़ोस का सबसे सुंदर मकान

आते होंगे पास पड़ोसी
तीज त्यौहार पर गुझिया तो,
कभी होली के रंग लेकर
पिता की बनाई छत पर
बरसात के पकोड़े
मित्रों की गपशप और,
मुँडेर पर बैठती चिड़ियाँ...
अब इमारतें बदल गईं
क्या स्मृतियाँ बिसर गईं
आखिर क्यों नहीं दृढ़ रह पाया
ईंट गारे मिट्टी की तरह परिवार भी
क्या विदेश में बसकर
बिसर गई स्मृतियाँ, पुश्तैनी घर,
लोग बसाते हैं घर, फिर क्यों,
नितांत निजता में जीते हैं जीवन
एक दुविधा जीवन बन गई
जहाँ बसे थे वहाँ रह न सके
जहाँ रहे वहाँ बस न सके
दरअसल ये मकान नहीं
वो घर है
जिसे निहार तो सकते हैं
पर दुलार नहीं
अक्सर लोग लिखते हैं 'घर बेचना है'
शुक्र है लिखा था-मकान बिकाऊ है
घर नहीं ...

सम्पर्क : *इंदौर (म.प्र.)*
मो. 9424509155

इंजी. आशा शर्मा

बोझ

महामारियाँ तो पहले भी बहुत आई थीं लेकिन उनकी भयावहता सिर्फ कानों सुनी या किताबों पढ़ी बातों तक ही सीमित रहीं, प्रत्यक्ष आँखों देखी जिसे अनुभव किया वह कोरोना है। पिछली महामारियों के बारे में बात करें तो मरने वालों के आँकड़े सिर्फ आश्चर्य पैदा करते हैं लेकिन कोरोना के आँकड़े भीतर तक सिहरन पैदा करने वाले हैं। अपनों को खोने का डर वास्तव में क्या होता है वह इसी महामारी ने महसूस करवाया है। कहते हैं न कि दर्द का अहसास तभी होता है जब चोट खुद को लगती है। दूसरों के बहते खून पर दर्द नहीं, सहानुभूति ही पैदा होती है। ऐसा ही कुछ क्वारन्टीन सेंटर में भर्ती मैं भी महसूस कर रहा हूँ। पिछले दस दिनों में मैं न जाने कितनी बार लॉक और अनलॉक होते दिनों को जी चुका हूँ।

नए साल की शुरुआत में जब इस बीमारी के बारे में खबरों में सुना तो सबकी तरह मैंने भी इसे बहुत हल्के में लिया था। कोरोना, कोविड, लॉकडाउन, पीपीई किट जैसे जाने कितने ही शब्द हवा में तैरते हुए जुबान पर चढ़ गए थे। क्वारन्टीन तो शब्द ही नया था। सिर्फ मेरे लिए ही नहीं बल्कि सभी के लिए। सही उच्चारण सीखने में ही कई दिन लगे थे।

'पहला लॉकडाउन कितना रोमांचकारी था।' सोचकर होठों पर मुस्कान स्वचालित बत्ती सी जल गई। ऑफिस के कामकाज से पूरी तरह छुट्टी। घर में उत्सव सा माहौल। दिन भर रसोई महकती और टीवी चीखता था। देर रात तक लूडो और ताश की बाजियाँ चलती थीं। इस बीच मजदूरों का पलायन, दवा के लिए भटकते मरीज, बिना काम भूखों मरने और पैदल ही अपने गंतव्य की तरफ बढ़ने वाले लाचार लोगों के साथ होने वाली दुर्घटनाओं के कई समाचार विचलित करने वाले भी होते थे लेकिन उनका प्रभाव अस्थाई होता था। मोबाइल पर कॉमेडी वेब सीरीज देखकर हँसते हुए मैं अपना सारा तनाव भुला देता था।

अपने खिलखिलाते दो जोड़ी चेहरों को देखकर कई बार मेरा मन कचोटता था कि इन चेहरों में एक जोड़ी चेहरा और बढ़ जाता तो क्या ही अच्छा लगता लेकिन माँ-पिताजी के जिक्र के साथ ही रमा की चढ़ी नाक देखकर मैं मन मसोसने के अलावा कुछ नहीं कर पाता था।

'मैं कहाँ कुछ कह रही हूँ।' कह कर सबकुछ कह देने वाली रमा के सामने मैं कुछ कर भी कहाँ पाया कभी। शादी के बाद पाँच साल तक जब तक बच्चे थोड़े पल न गए तब तक तो घर में किसी तरह

निभी लेकिन उसके बाद आये दिन की कलह से बचने के लिए मुझे अलग मकान लेना ही पड़ा। सच कहूँ तो इसमें रमा या माँ से अधिक दोष मुझे खुद अपना ही दिखाई दे रहा था। शायद मैं ही दोनों को विश्वास नहीं दिला सका था कि वे दोनों ही मेरी जिंदगी में समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। न कोई कम-न कोई ज्यादा।

मुझे शर्म तो बहुत आई थी जब एक ही शहर में रहते हुए भी चूल्हे दो हो गए थे। सामान ट्रक में लादकर जब गली से निकलने को हुआ तो ऊपर छत वाले कमरे में से खिड़की के परदे की आड़ लिए माँ झाँकती सी महसूस हुई। शायद मेरा भ्रम रहा होगा। माँ भी तो कहाँ निभा पा रही थी रमा से। कितने ही दिनों तक नाते-रिश्तेदारों और यार-दोस्तों के सामने झेंप मिटाने के लिए घर छोटा पड़ने का झूठ बोलता रहा था लेकिन सच तो यही था कि छोटा घर नहीं बल्कि दिल पड़ने लगा था।

मनुष्य बहुत ही लचीला प्राणी है। समय के साथ ढलने वाला और अव्वल दर्जे का भुलक्कड़ भी। मैं भी धीरे-धीरे यह भूल कर कि माँ को अपनी शुगर की जाँच करवाने और पिताजी को अपनी दवा लाने सरकारी अस्पताल अकेले जाना पड़ता है, अपनी हम दो हमारे दो वाली गृहस्थी में डूबा रमा के अनुसार ढलने लगा था।

एक बार जब जून की ढलती दोपहरी में ऑफिस से लौटते समय मैंने पिताजी को स्कूटी पर राशन से भरा थैला टाँगकर एक तरफ झुकती हुई स्कूटी को किसी तरह बैलेंस बनाकर जाते देखा था तो अपनी एसी कार पर बहुत शर्म आई थी। जरा आगे जाकर एक पेड़ की छाँव में मैं यह सोचकर रुका भी था कि उन्हें घर तक छोड़ दूँ लेकिन तभी ख्याल आया कि यदि पिताजी को घर छोड़ दूँगा तो फिर उनकी स्कूटी का क्या करूँगा? उसे कैसे घर तक पहुँचाऊँगा। खामखाँ अंधा न्यौतो और दो बुलाओ वाली स्थिति हो जाएगी। यह विचार आते ही एकाएक मेरे पाँव का दबाव एक्सीलेटर पर बढ़ने लगा और साइड मिरर में अपनी स्कूटी पर राशन का थैला लटकाए कभी चेहरे तो कभी बाल रहित सिर को गमछे में लपेटने की कोशिश करते दिखते पिताजी मुझसे दूर होने लगे। वैसे कुछ सालों से तो हम नजदीक थे भी कहाँ?

पिताजी से हटती हुई मेरी निगाह साइड मिरर पर लिखे वाक्य पर जाकर ठहर गई। 'ऑब्जेक्ट्स इन मिरर आर क्लोजर देन दे अपीयर।' कितना गलत लिखा था। शीशे में दिखते पिताजी तो दिखने से कहीं ज्यादा दूर हैं मुझसे। मुझे अचानक लगा मानो थैले के बोझ से खुद मेरे कंधे भारी होने लगे हैं। फिर बच्चों की चॉकलेट की फरमाइश याद आते ही मैंने माथे पर चिलक आई पसीने की बूँदों के साथ ही इस अनचाहे बोझ को भी झटक दिया और गाड़ी डिपार्टमेंटल स्टोर की तरफ बढ़ा दी।

पहले लॉकडाउन के बाद दूसरा लॉकडाउन... अभी तक सब ठीक ही चल रहा था। रसोईघर के डिब्बे राशन से भरे हुए थे। बिजली-पानी के साथ-साथ डिश टीवी और मोबाइल के कनेक्शन भी यथावत थे। बैंक में हर महीने वेतन जमा हो रहा था। मैं और मेरी स्वीट फैमिली महामारी के प्रकोप से सुरक्षित थे और भरपूर एन्जॉय करते मन ही मन लॉकडाउन के लम्बे खिंचने की प्रार्थना कर रहे थे। मुफ्तखोरी भला किसे अच्छी नहीं लगती।

नींद कितनी भी गहरी हो, आखिर टूटती ही है। देश के अनलॉक होने का दौर शुरू हुआ। बच्चों के स्कूल को छोड़कर सब कुछ धीरे-धीरे खुलने लगा था। कुछ दिन के वर्क फ्रॉम होम के बाद अब मैं भी

नियमित ऑफिस जाने लगा। महामारी का शुरुआती डर अब कुछ-कुछ लापरवाही में बदलने लगा था। बच्चे अपने दोस्तों के साथ कैफे और रमा पड़ोसनों के साथ औपचारिक दूरी रखते हुए शाम की सैर पर जाने लगी थी। बस! माँ-पिताजी से मिलने जाना ही था जो कोरोना के खतरे के कारण बार-बार टल रहा था।

'दिन भर में दस जनों से मिलते हो, बेकार ही इस उम्र में उन्हें खतरे में डाल दोगे। सुना नहीं? सरकार कह रही है कि बच्चों और बुजुर्गों का खास ख्याल रखो।' रमा मेरी जुबान पर अपने तर्क का ताला लगा देती। मैं चाहकर भी पलटवार नहीं कर पाता था।

उस दिन जब मैं शाम को ऑफिस से निकलने की तैयारी कर ही रहा था कि मोबाइल बज उठा। देखा तो माँ का फोन था।

'बेटा! तेरे पिताजी सीढ़ियों से गिर गए। उन्हें अस्पताल ले जा रहे हैं। तू जल्दी आ जा।' माँ के घबराए स्वर ने रमा की टेढ़ी आँखों को ढक लिया और मैंने बिना एक पल गँवाए गाड़ी उधर ही घुमा ली। वहाँ जाकर पता चला कि पिताजी को अस्पताल लेकर गए आधा घंटा हो गया। बदहवास सा मैं अस्पताल की तरफ भागा। मुझे जरा सी चोट लगने पर ऑटो में बैठते पिताजी रास्ते भर स्मृतियों में कौंधते रहे।

अस्पताल जाकर देखा, माँ की हालत तो कुछ भी कहने की नहीं थी। उनकी आँखों में तैरते भय को पढ़कर मैंने उन्हें सीने से लगा लिया ठीक वैसे ही जैसे बचपन में छिपकली से डरने पर माँ मुझे चिपका लिया करती थी। मेरे स्पर्श से माँ की उखड़ी उम्मीद संयत होने लगी।

डॉक्टर ने बताया कि पिताजी की रीढ़ की हड्डी में गहरी चोट लगी है लेकिन उम्र अधिक होने के कारण अभी ऑपरेशन करने पर विचार नहीं करेंगे। मैंने फोन पर रमा को यह खबर दी तो वह भी कुछ घबरा गई। मुझे समझ में नहीं आया कि उस घबराहट के पीछे की वजह क्या रही होगी। पिताजी की चोट या उनकी देखभाल करने की सामने दिखती जिम्मेदारी।

खैर! लोक दिखावा ही सही लेकिन रमा पिताजी को देखने अस्पताल आई तो उसने माँ के गले लगकर उन्हें भी दिलासा दी और अपने साथ रहने के लिए जिद भी की। रमा का बदला हुआ स्वरूप देखकर मुझे पत्नी पर प्रेम उमड़ने लगा। जिस रमा के कारण मैं माँ से ये सब कहने की हिम्मत ही नहीं जुटा पा रहा था उसी रमा ने कितनी आसानी से मेरे मन का भार अपने ऊपर ले लिया। लेकिन रमा की घबराहट के जैसे ही रमा के आश्वासन के बाद माँ की आँखों में उतरा भय भी मैं समझ नहीं पाया।

दस दिन अस्पताल में रहकर अपाहिज हो चुके पिताजी को एम्बुलेंस में लादकर घर लाते समय मैं रास्ते भर सोचता रहा कि दो कमरों के किराए के मकान में रमा ने इनके रहने के लिए कौनसी जगह तय की होगी। शायद लॉबी।

'हाँ! लॉबी में ही ठीक रहेगा, सबके बीच में रहेंगे तो आने-जाने वालों को भी सुविधा रहेगी और खुद इनका भी मन लगा रहेगा। मैं भी बराबर उनकी जरूरतों का ध्यान रख सकूँगा।' मैं मन ही मन अपने आप से वार्ता कर रहा था।

अनुमान के विपरीत रमा ने घर के पिछवाड़े कपड़े सुखाने वाली गैलरी में जो कि फाइबर शीट से ढकी हुई थी, एक तरफ दीवार के सहारे पिताजी का बिस्तर लगा दिया था। उसी के पास एक प्लास्टिक

की पुरानी कुर्सी भी रखी थी। यह शायद माँ के बैठने के लिए थी। मरीज के लिए ऐसी व्यवस्था देखकर मेरे साथ-साथ नर्सिंग स्टाफ भी चौंक गया था। मैं नर्सिंग स्टाफ की आँखों में छिपे व्यंग्य को अपनी जुबान पर ले आया।

'यहाँ?' मैंने पत्नी से पूछा।

'तो और कहाँ? दो ही तो कमरे हैं। लॉबी में बिस्तर लगा दूँ तो आने-जाने वाले रिश्तेदारों को कहाँ बिठाओगे? तीन तो तुम्हारी बहनें ही हैं। ऊपर से मुझे भी सारा दिन सिर पर पल्लू टाँग कर घूमना पड़ेगा। मुझसे इतने की उम्मीद मत रखना।' रमा ने तल्खी से कहा। मुझे कुछ इसी तरह के जवाब की उम्मीद थी। मैंने चुप रहने में ही भलाई समझी। हालाँकि अपनी झेंप मिटाने के लिए मैंने दो दिन बाद ही लोहे की चारपाई पर नर्म गद्दा लाकर जरूर बिछा दिया था और माँ के लिए कुर्सी भी कुशन वाली ले आया था। देखते ही रमा बड़बड़ाई थी- 'नया का नया देना पड़ेगा।' पहले तो मैं कुछ समझा नहीं लेकिन बाद में इस वाक्य के पीछे का मंतव्य भाँप कर काँप गया।

अभी पंद्रह दिन भी नहीं बीते थे कि रमा बढ़ते खर्चे का रोना रोने लगी। कभी पिताजी को दूध नहीं मिलता तो कभी माँ की थाली से दही की कटोरी गायब। कभी सब्जी के नाम पर घर में सुबह-शाम केवल आलू ही बन रहे हैं तो कभी बिना चुपड़ी चपाती परोसी जा रही है।

दिन-रात की इस किचकिच से रसोई उदास हो गई और टीवी शांत। घर की खिलखिलाहट सन्नाटे में बदल गई। न लूडो न ताश की बाजी। सब चुप्पा हो गए। अब कोई किसी से चुहल नहीं करता। माहौल भाँपकर माँ भी सहमी-सहमी सी रहने लगीं। अपनी जरूरत भी मुझे इस तरह से बतातीं मानो कोई गुनाह कर रही हो। माँ के इस दयनीय स्वरूप की मुझे आदत नहीं थी। मैंने तो सदा माँ का ठसका ही देखा था। मैं ग्लानि से भर उठता लेकिन कुछ कर नहीं पाता। ऐसा नहीं है कि मैं करना चाहता नहीं, बस करने का साहस ही नहीं जुटा पाता। शायद लगातार तटस्थ रहने के कारण मुझे विरोध करने की आदत ही नहीं रही थी।

'सुबह पाँच बजे उठकर मुझसे चाय नहीं बनाई जाएगी। वे तो बुजुर्ग हैं, नींद नहीं आती होगी लेकिन मुझे तो सुबह की उठी, रात को ही बिस्तर नसीब होता है। या तो मम्मी खुद बना लें या तुम जानो।' जिस दिन रमा ने कहा था उसी दिन से सुबह पाँच बजे उठकर माँ-पिताजी के लिए चाय बनाने का काम मेरा हो गया था। ठीक ही था। इस बहाने हम माँ-बेटे साथ बैठते तो माँ कुछ अपने सुख-दुःख मुझसे कह पाती थी। दो घड़ी पिताजी के हाथ सहलाने का सुख भी मैं पा लेता था जो शेष दिन भर मुझे नहीं मिल पाता था।

उस दिन भी जब मैं तीन कप अदरक वाली कड़क चाय बनाकर पीछे गैलरी में गया तो देखा माँ जमीन पर बिछा अपना बिस्तर समेट रही थीं। मैंने पिताजी को हिलाकर जगाया तो शरीर में कोई हलचल नहीं हुई। नाड़ी देखी तो शरीर ठंडा पड़ने लगा था। शायद रात में ही किसी पल विदा हो गए थे। मैंने अकबकाई सी खड़ी माँ को कंधे से लगा लिया।

'सुख पाए। ऐसे नरक भोगने से तो ठीक ही हुआ कि स्वर्ग धाम चले गए।' कोई अच्छा तो कोई दुखद कहते हुए पिताजी को अंतिम विदाई देने के लिए आये रिश्तेदार अपना-अपना मत रख रहे थे। सब

एक बीमार, लाचार और अपाहिज बुजुर्ग का जाना देख रहे थे। किसी को भी एक पिता का जाना दिखाई नहीं दिया। मैं अनायास ही अपनेआप को अनाथ महसूस करने लगा।

मेरे मन में मलाल ही रहा कि कोरोना एडवाइजरी के कारण पिताजी की अंतिम क्रिया से जुड़े संस्कार ठीक से नहीं कर पाया। माँ भी उदास थी। उनका मन रखने के लिए मैंने पिताजी की अस्थियाँ सँभाल कर रख लीं ताकि स्थिति सामान्य होने पर उन्हें पूरे विधिविधान के साथ विसर्जित किया जा सके।

अभी पिताजी तो ठीक से विदा भी नहीं हुए थे कि माँ की तबियत खराब हो गई। पता नहीं वे अपने भविष्य को लेकर आशंकित थीं या फिर कोई असुरक्षा की भावना... अचानक बढ़ी शुगर ने उन्हें भी अस्पताल पहुँचा दिया।

मुझ में अचानक ही पत्नी का विरोध करने की ताकत न जाने कहाँ से आ गई। रमा के लाख मना करने के बावजूद मैं रात-दिन माँ के साथ अस्पताल में ही बना हुआ था। पिताजी को तो खो ही चुका था, अब माँ को नहीं खोना चाहता। इसी डर से दवाओं और डॉक्टरों के पीछे दौड़ता मैं अनजाने ही लापरवाह होता गया। मैं भूल जाता था कि सिर्फ मुँह पर मास्क लगाना ही काफी नहीं होता, कोरोना से बचने के लिए कई अन्य सावधानियाँ भी बरतनी पड़ती हैं।

मेरी मेहनत रंग लाने लगी। माँ की हालत में अब कुछ सुधार दिखने लगा था। मैं माँ के पास बैठा उनका हाथ थामे उन्हें हिम्मत बँधाता रहता। सबकुछ ठीक होने के लगभग करीब ही था कि अचानक पाँचवें दिन मुझे हरारत सी महसूस होने लगी। थकान को जिम्मेदार ठहराते हुए मैं लगातार माँ की तीमारदारी में लगा रहा। बुखार के साथ जब खाँसी और साँस लेने में तकलीफ भी शुरू हो गई तो डॉक्टरों ने मुझे कोरोना जाँच की सलाह दी। जाँच में पॉजिटव आते ही मुझे पंद्रह दिन के लिए क्वारन्टीन सेंटर में भेज दिया गया।

खबर सुनते ही माँ की सुधरती हालत फिर से बिगड़ने लगी। इधर रमा ने भी मेरे संक्रमित होने का सारा दोष माँ पर मढ़ दिया। एक दिन तो अस्पताल जाकर बातों ही बातों में उन्हें सुना भी आई कि न वे बीमार होतीं न उन्हें अस्पताल में भर्ती करवाना पड़ता और न ही ये कोरोना का जिन्न हमारे घर में प्रवेश करता।

मेरे क्वारन्टीन होते ही अस्पताल में माँ अकेली हो गईं। मुझे अपनी बीमारी से अधिक माँ की चिंता हो रही थी। रमा ने तो उनकी देखभाल करने से साफ मना कर दिया था। रह-रहकर सिर्फ एक ही ख्याल मन में आ रहा था कि आईसीयू में अकेली पड़ी अपने मन से झूझती माँ को सांत्वना देने वाला भी कोई नहीं होगा। हर आहट पर खुलते दरवाजे की चरमराहट के साथ ही माँ की आँखों में उम्मीद के जलते दिए भक्क से बुझ जाते होंगे।

'हो सकता है कि मुझे आसपास न पाकर माँ किसी आशंका से भी घिर जाती होंगी। पापा का बरसों का साथ छूटने के बाद माँ कितनी निरीह सी लगने लगी थी। रमा से तो वे यूँ दहलने लगी थीं जैसे शेर से बकरी। हो सकता है इसी चिंता और फिकर से उनकी शुगर अनियंत्रित हो गई हो' आइसोलेशन में पड़ा मैं और भी न जाने क्या-क्या वाहियात सोचता रहता।

यादें भी कमाल होती हैं। तभी आती हैं जब व्यक्ति अकेला होता है मानो उसका अकेलापन दूर

करना चाहती हों लेकिन नहीं जानती कि अपनी इस कोशिश में वह व्यक्ति को और भी अधिक अकेला कर जाती हैं। माँ को मैं जितना अधिक याद करता उतना ही अधिक अकेला होता जाता।

'रमा और बच्चे तो वीडियो कॉल पर भी बात कर लेते हैं लेकिन माँ बेचारी तो फोन भी नहीं कर सकती। उफ्फ! कैसी मजबूरी है। कैसी बेदर्द महामारी है। अपनों की तकलीफ बाँटने के लिए उन्हें गले तक नहीं लगा सकते।' अपनी परिस्थिति पर मैं लाख झुँझलाता लेकिन कर कुछ भी नहीं पा रहा था। अगले पंद्रह दिन तो मुझे इसी तरह सबसे दूर रहना पड़ेगा।

अपने किसी दोस्त को फोन करके मैंने माँ के पास रहने के लिए एक नर्स की व्यवस्था करवाई। उसी नर्स के मोबाइल पर वीडियो कॉल करके जब मैंने माँ की हालत देखी तो सन्न रह गया। किसी ने मुझे बताया भी नहीं कि माँ कल से वेंटीलेटर पर हैं। नर्स से पूछा तो उसने कहा आपकी वाइफ को बता दिया था।

वार्ड से सुपर स्पेशलिटी सेंटर और फिर आईसीयू से लेकर वेंटीलेटर तक का सफर माँ ने दो ही दिन में पूरा कर लिया था। इस बीच कोरोना की जाँच भी हुई जिसमें उन्हें भी संक्रमण की पुष्टि हुई। मैं भरी आँखों से अपने हाथ खाली होते देख रहा था लेकिन प्रार्थना के अतिरिक्त मेरे वश में कुछ था भी कहाँ।

दूसरे दिन सुबह नर्स ने फोन पर बताया कि माँ का ऑक्सीजन लेवल लगातार नीचे जा रहा है। सुनकर मुझे अपनी साँसें भी घुटती हुई महसूस होने लगीं। दोपहर तक मुझसे रहा नहीं गया तो किसी तरह मिन्नतें-सिफारिशें करके मैंने माँ को देखने की अनुमति का जुगाड़ बिठाया।

पीपीई किट पहनकर मैं धड़कते दिल से माँ के करीब गया। मैंने माँ का हाथ छुआ लेकिन शायद पीपीई किट के प्लास्टिक के बीच में आने के कारण माँ मेरे स्पर्श को पहचान नहीं पाईं। मैंने धीरे से उन्हें पुकारा। आवाज पीपीई किट में ही घुटकर रह गई। आँखों पर चढ़ा चश्मा भीग गया तो मैं आईसीयू से बाहर आ गया। अभी मैंने चश्मा उतारकर आँसू पोछे भी नहीं थे कि पीछे-पीछे आई नर्स ने धीरे से कहा- 'सॉरी! शी इज नो मोर'। मेरी आँखें फिर से बहने लगीं।

ऊपरी तौर पर सिर्फ इतना ही फर्क पड़ा कि कोरोना से मरने वालों के आँकड़े में एक अंक का इजाफा और हो गया। इसके अतिरिक्त सबकुछ वैसा ही था जैसा पहले। रिक्त हुआ वेंटीलेटर तुरंत किसी अन्य मरीज को लगा दिया गया। खोया था तो सिर्फ मैंने। एक मरीज कितने रिश्तों से जुड़ा होता है यह सोचने की फुर्सत किसे थी।

माँ के पार्थिव शरीर को प्लास्टिक के बैग में पैक करके अस्पताल से सीधे शमशान ले जाया गया। न अंतिम दर्शन न विधिवत विदाई। न रोने के लिए कंधा न आँसू पोंछने वाले हाथ। सिर्फ मैं और पंडित जी दो ही माँ की अंतिम यात्रा के साक्षी बने। चिता के फेरे लगाता मैं लगातार इस महामारी को कोस रहा था। एक झटके में ही आशीर्वाद देने वाले चारों हाथ छूट गए।

मैं वहीं शमशान से ही वापस क्वारन्टीन सेंटर आ गया था। अभी तो सप्ताह भर का समय मुझे यहाँ और बिताना है। मन में कोई इच्छा कोई उमंग शेष नहीं रही। वीडियो कॉल पर दिखते बच्चों के मासूम चेहरे भी जिंदगी के प्रति कोई अनुराग पैदा नहीं कर पा रहे थे।

रमा ने अखबार में शोक संदेश लगवा दिया कि कोरोना के कारण घर पर कोई नियमित बैठक

नहीं रखी जा रही है। संवेदनाएँ फोन पर ही व्यक्त करें लेकिन फोन पर व्यक्त की गई संवेदनाओं में वो आत्मीयता कहाँ होती है जो भींच कर गले लगाने में होती है। भींच कर गले लगाना याद आते ही मुझे माँ की गोद याद आ गई। इसके साथ ही दिन भर से जबरन रोका गया बहाव भी खुल गया। मैं हिचकियाँ लेकर रोने लगा। आसपास के बेड वाले मरीज मुझे दु:ख और हैरानी से देख रहे थे लेकिन पास आने का साहस कोई नहीं जुटा पाया। कुछ देर बाद मैं खुद ही शांत हो गया।

'हो सकता है कालांतर में यह महामारी भी पन्नों में दर्ज होकर रह जाए। हो सकता है कि इसके बारे में पढ़ने वाले लोग इसकी भयावहता को महसूस न कर पाएँ क्योंकि दर्द पढ़ने, सुनने या देखने से नहीं बल्कि भोगने से महसूस होता है।' मैंने बुदबुदाते हुए अपनी आँखें पोछी। हाथ मल कर आदतन हथेली देखी तो दर्द की लकीरों के बीच बनता बिगड़ता माँ का चेहरा दिखाई देने लगा। मैंने हथेलियों से अपना चेहरा ढाँप लिया मानो माँ के गाल चूम लिए हों। अलबत्ता कन्धों पर बोझ अब भी महसूस हो रहा था।

सम्पर्क : *बीकानेर (राजस्थान)*
मो. 9413369571

आचार्य नीरज शास्त्री

आत्मनिर्भर

संजय को क्वारंटाइन में रहते हुए बीस दिन बीत चुके थे। वह पिछले बीस दिनों से एक ही उधेड़बुन में लगा था कि इक्कीस दिन की क्वारंटाइन अवधि बीत जाने पर वह क्या करेगा? रह-रह कर उसके सामने पिताजी का चेहरा उभर आता था। पिताजी ने ईंट भट्टे पर मजदूरी करके उसे, उसके तीन भाइयों और बड़ी बहन को पाल-पोस कर बड़ा किया था। बड़ी बहन की शादी के समय उन्हें ठेकेदार से कर्जा लेना पड़ा था, जिसे चुकाते-चुकाते वे थककर चूर हो चुके हैं। अब तो उनके चेहरे पर अस्ताचल को जाते सूरज का प्रतिबिंब सा दिखाई देता है। झुर्रियाँ पड़ चुके चेहरे पर धँसी हुई आँखें पूरी तरह निस्तेज लगती हैं।... और... माँ वह भी तो जिंदगी के संघर्ष में सदा पिताजी की छाया की तरह उनके साथ रही हैं। अब तो उसे ठीक से दिखाई भी नहीं देता। चलने-फिरने से लेकर खाने-पीने तक माँ दूसरों पर ही निर्भर है।

कितने हसीन थे दिन, जब छोटा था। पिताजी भट्टे पर जाया करते थे। माँ घर का चौका-चूल्हा कर हम भाई-बहनों को खाना खिलाकर चार मोटी-मोटी रोटियों के साथ प्याज की गाँठ और छुकी हुई मिर्च लेकर पिताजी को देने जाती थी। तब हम भी माँ के साथ जाते थे और गीली मिट्टी से तरह-तरह के खिलौने बनाकर खेला करते थे। पिताजी भट्टे की ओर से मिलने वाले गुड़ को हम पाँचों भाई-बहनों में बाँट दिया करते थे।... कितना मिठास थी उस गुड़ में! ...उस गुड़ से भी ज्यादा मिठास थी पिताजी के प्यार में। ओह! वो बचपन कितना पीछे छूट गया! अब तो हम चारों भाइयों की शादी हुए भी कई वर्ष हो गए। मेरी तीनों भाभियाँ कितनी सरल हैं! अपनी शादी से आज तक उन्होंने कभी कोई शिकायत नहीं की।...और शीतल... मेरी शीतल, कितनी शीतल है! शादी के दो वर्ष बीत जाने पर भी आज तक उसने कभी लक्स साबुन, लिपस्टिक और काजल तक की माँग नहीं की। कितनी सरल है वो, पूरे परिवार के प्रति कितना सेवा भाव है शीतल के मन में! और मैंने... आज तक उसे कुछ नहीं दिया।

बड़े भाई साहब की बेटी दिव्या और मँझले भाई साहब का बेटा गोलू बड़े हो रहे हैं, अब उनके लिए भी उचित व्यवस्थाएँ होना जरूरी है। इन दोनों के लिए भी अब तक हमने साल में केवल दो-दो जोड़ी कपड़े ही दिलवाए हैं। और सबसे छोटे भाई साहब की बेटी चारू... मेरी प्यारी सी गुड़िया वह तो अभी तक दिव्या और गोलू के खिलौने से ही खेलती है।

कुल मिलाकर हम चारों भाइयों ने इन पाँच सालों में फिरोजाबाद के चूड़ी कारखाने में नौकरी करते हुए जो भी कमाया सब कर्जा उतारने में ही गया है। हाँ ...एक बात अवश्य है, ईश्वर की कृपा से कर्जा उतर गया है। संयुक्त परिवार में रहने के यही तो लाभ हैं। सभी एक-दूसरे की बाँह पकड़कर पार हो जाते

हैं। परंतु इसमें सबसे ज्यादा धन्यवाद की पात्र हैं मेरी तीनों भाभियाँ और शीतल। ये चारों एक-दूसरे से बहनों की तरह प्रेम करती हैं, तभी तो हमारा परिवार दुर्दिनों में भी जुड़ा रह सका है। तभी तो हम चारों भाई एक साथ एक ही कारखाने में काम करते हुए प्रेम और शांति से आज तक एक-दूसरे के साथ हैं।

ओह! यह भी कैसा इत्तफाक है... कि... अपने परिवार की भलाई के लिए हम चारों भाई बरसों अपने घर से दूर रहे परंतु... इस भीषण कोरोना संकट ने हमें घर वापस लौटने के लिए मजबूर कर दिया। खैर ...कोई बात नहीं, अपने गाँव तो हम आ ही गए। यह बात अलग है कि पिछले बीस दिनों से क्वारंटाइन में रहने के कारण परिवार के किसी व्यक्ति से न मिल सके हम। चलो, हम चारों भाई तो यहाँ क्वारंटाइन में एक-दूसरे के साथ हैं, यही बहुत है। वह अपने तख्त पर लेटे हुए यह सोच ही रहा था कि कुत्ते के भौंकने की आवाज से उसका ध्यान कमरे के बाहर गया। खिड़की से झाँक कर देखा। तारे चमक रहे थे और शायद रात अभी बाकी थी। अनमने भाव से दीवार की ओर देखा। दीवार पर लगी टूटे हुए काँच की घड़ी में पौने तीन बजे थे। उसने करवट बदल ली। तभी उसका ध्यान उन बीस मजदूरों की ओर गया जो उनके साथ ही क्वारंटाइन थे। उसने सोचा- 'इनके परिवार के लोग भी इन्हें याद करते होंगे। इनकी भी परिस्थितियाँ शायद हम चारों भाइयों की तरह होंगी। हो सकता है, इनकी परिस्थितियाँ और भी विषम हों। कारखाने के अनिश्चितकाल के लिए बंद होने से इस कोरोना संकट में केवल हमारे लिए ही परेशानी नहीं हुई, ये बेचारे भी बेरोजगार हुए हैं।

पिताजी की हड्डी तोड़ मेहनत के कारण हम चारों भाई तो बी. ए . तक पढ़कर ऑफिशियल जॉब कर रहे हैं परंतु ये बेचारे तो अनपढ़ ही होंगे। मुझे तो हम चारों की ही चिंता है परंतु इन बेचारों का क्या होगा?... कैसे जलेगा इनके घर का चूल्हा?

अवश्य मुझे कुछ ऐसा करना चाहिए कि इनके चेहरे पर भी मुस्कान खिलती रहे। इनके बीवी-बच्चों को कभी भूखे पेट न सोना पड़े।

हाँ, मैं ऐसा ही करूँगा। सुबह उठते ही सबसे बात करूँगा। यह सोचते हुए वह नींद के आगोश में चला गया। सुबह आँख खुली तो देखा सूरज काफी ऊपर चढ़ चुका था। कमरे के बाहर धूप खिल रही थी। एकाएक घड़ी की ओर नजर गई, साढ़े आठ बज चुके थे।

वह पहले तो नित्य- निमित्तिक कर्मों से फारिग हुआ फिर उसने चाय का प्याला हाथ में लिए अपने बड़े भाइयों से बात की- 'भाई साहब! आज हम इस माध्यमिक विद्यालय के क्वारंटाइन सेंटर की दीवारों से आजाद हो जाएँगे। दोपहर तक सभी की कोरोना रिपोर्ट आ जाएगी। मुझे विश्वास है कि इस सेंटर के सभी लोगों की रिपोर्ट निगेटिव होगी।'

यदि ऐसा होता है तो हमें कुछ ऐसा करना होगा जिससे इन सभी मजदूरों की बेरोजगारी दूर हो सके। तीनों भाइयों ने उसे अपनी सहमति दे दी। भोजन के पश्चात सभी अपने-अपने बिस्तर पर लेटे ही थे कि अस्पताल का एक कर्मचारी रिपोर्ट लेकर आ गया। उसने बताया कि माध्यमिक विद्यालय के क्वारंटाइन सेंटर के सभी चौबीस लोगों की रिपोर्ट निगेटिव है। सभी के चेहरे गुलाब से खिल गए।

सभी ने अपना-अपना सामान समेटना शुरू किया तो संजय ने कहा- 'भाइयों आज मैं आप सभी से एक जरूरी बात करना चाहता हूँ। कारखाना अनिश्चित काल के लिए बंद हुआ है...कारखाना खुलने तक

क्या करेंगे आप?'

किसी के मुँह से कोई भी उत्तर नहीं निकला।

संजय ने अगला प्रश्न किया- 'मित्रों मैं जानता हूँ कि आप सभी को रोजगार की विशेष जरूरत है। यदि रोजगार नहीं होगा तो परिवार चलाना संभव नहीं होगा। क्या आप मेरी बात से सहमत हैं?'

सभी ने स्वीकृति में सिर हिलाया तो संजय ने पूछा- 'आप में से कितने लोगों को हाथ का हुनर आता है।'

राजू ने उत्तर दिया- 'मैं सिलाई का काम जानता हूँ।'

कृष्णा बोला- 'मुझे वेल्डिंग का काम आता है भैया!'

मोहन ने कहा- 'भैया! मैं हेयर कटिंग का काम जानता हूँ।'

राजेश ने कहा- 'मैं मोमबत्ती बनाना जानता हूँ।'

माधव बोला - 'मुझे बिजली का काम आता है।'

पाँचों की बात सुनकर संजय ने कहा- 'ठीक है मित्रों! परंतु आप लोग गुणी होकर भी किसी कारखाने में मजदूरी कर रहे हैं, यह अच्छी बात नहीं है। आप को आत्मनिर्भर बनना चाहिए। आज़ आप सबके सामने स्वयं को सिद्ध करने का सुअवसर है। अपना स्वयं का काम शुरू कर दो और अपने साथियों को भी अपने साथ रखकर उन्हें भी रोजगार देकर काम सिखाओ और आत्मनिर्भर बनने में उनकी सहायता करो।'

संजय की बात सुनकर राजू बोला- 'आप ठीक कहते हो भैया! मैं तो चाहता हूँ कि किड्स गारमेंट बनाकर दूर-दूर तक सप्लाई करूँ लेकिन इसके लिए मेरे पास पैसा नहीं हैं।'

राजेश ने कहा- 'भैया पैसे की व्यवस्था होती तो मैं कभी मजदूरी नहीं करता मोमबत्ती का कारखाना खोलता।'

तभी चुपचाप खड़ा हुआ बल्लभ बोला - 'भैया! मैं तो आटा और पिसे मसालों का काम करना चाहता हूँ, पर पैसा नहीं है।'

संजय ने उत्तर दिया- 'आप लोग चिंता न करें, आत्मनिर्भर भारत योजना के अंतर्गत सरकार ने देश की जनता को आत्मनिर्भर बनाने के लिए कम ब्याज के लोन देने का बैंकों को आदेश दिया है। आप सभी कल मेरे साथ बैंक चलें। मैं सभी कागजी कार्यवाही पूरी करा दूँगा और आप लोग अपना काम शुरू करें, लेकिन मेरी एक शर्त है...।'

सभी ने एक स्वर में पूछा-

'क्या शर्त है भैया?'

संजय ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया - 'आप सबको अपने साथियों को भी रोजगार देना होगा, और उनकी मदद करनी होगी आत्मनिर्भर बनने में।'

संजय की बात सभी ने स्वीकार कर ली।

तभी राजेश ने पूछा- 'बाकी सब की बात तो ठीक है भैया, पर आप क्या करेंगे? यह भी तो बताइए!'

संजय ने उत्तर दिया –'हम चारों भाई स्क्रीन प्रिंटिंग का काम करेंगे, क्योंकि बड़े भाई साहब ने सबसे पहले एक फार्म में स्क्रीन प्रिंटिंग का काम ही किया था और छोटे भाई साहब ने डिजाइनर का। वैसे भी हमें तो आप लोगों का प्रचार-प्रसार करना है न!'

यह सुनते ही सब खिलखिला कर हँस पड़े।

संजय बोला–'हमारे लिए स्क्रीन प्रिंटिंग का काम ही उचित है। आप में से जो भी हमारे साथ आना चाहें आ सकते हैं लेकिन काम सीखने के बाद अपना काम शुरू करना होगा।'

बात पूरी करने के बाद उसने सभी के पते और फोन नंबर लिए। राजू, कृष्णा, मोहन, माधव, राजेश और बल्लभ के साथ दो-दो लोग और काम करने व सीखने को तैयार हो गए, शेष बचे दो चुन्नी और पदम को संजय ने अपने साथ ले लिया। इस तरह उस दिन सभी क्वारंटाइन सेंटर से मुक्ति पाकर अपने-अपने घर पहुँचे। सभी के परिवारी उनके सकुशल लौटने के लिए लालायित थे। इसलिए गाँव में खुशी की लहर दौड़ गई।

अगले दिन संजय ने राजू, कृष्णा, मोहन, माधव, राजेश और बल्लभ को अपने घर बुलाया और उन्हें अपने साथ लेकर बैंक पहुँचा। कागजी कार्यवाही पूरी होने के बाद सभी का लोन स्वीकृत हो गया। राजू ने ज्योति गारमेंट्स के नाम से बच्चों के कपड़ों का कारखाना खोला तो कृष्णा वेल्डर बन गया। मोहन ने शानदार हेयर कटिंग सैलून खोला। माधव ने बिजली के सामान की दुकान खोली, जहाँ बिजली से संबंधित सभी कार्य किए जाते हैं। राजेश ने जगमग मोमबत्ती वर्क्स की स्थापना की और बल्लभ ने अपनी माँ पार्वती के नाम पर पार्वती आटा और मसाला उद्योग शुरू कर दिया। संजय और उसके तीन भाइयों ने आत्मनिर्भर स्क्रीन प्रिंटर्स की स्थापना की। पूरा गाँव जैसे खुशियाँ मना रहा था। चारों तरफ मिठाइयाँ बँट रही थीं। गाँव के सभी स्त्री-पुरुष और बच्चे गाँव में आई इस रौनक को देख रहे थे। स्त्री-पुरुषों की इस भीड़ में से एकाएक दो आँखें प्रेम का झरना लिए संजय पर जा टिकीं। संजय ने उस ओर देखा तो बोला – 'ओह शीतल तुम!... आत्मनिर्भर स्क्रीन प्रिंटर्स में तुम्हारा स्वागत है।'

शीतल मुस्कुराई और फिर लजा गई।

सम्पर्क : *मथुरा (उ.प्र.)*
मो. 9259146669

विनय त्रिपाठी

उऋण धन

लेखक केवल इसलिए नहीं लिखता कि उससे किसी का आग्रह-दुराग्रह होता है या कि हुलास का मारा होता; अपितु इसलिए भी लिखता है कि वह उऋण होना चाहता है। 'वह सूरज : मैं सूरजमुखी' कृति में डॉ. देवेन्द्र दीपक ने एक ऐसा ही 'उऋण धन' सँजोया है।

पूर्व प्रज्ञा-पुरुषों के अवदान पर केंद्रित सृजन कार्य स्वाभाविक रूप से महनीय हो जाता है। 'वह सूरज : मैं सूरजमुखी' का अध्ययन करते हुए आप इस बात को भली प्रकार समझ सकते हैं।

ऋषि मनीषा स्वामी विवेकानंद, महर्षि दयानंद की ध्वजपताका के उन्नायक लाला लाजपतराय, महात्मा गाँधी के प्रतिबद्ध अनुचर सरदार वल्लभभाई पटेल, नैपथ्य की देववाणी वीर सावरकर, समता का उद्घोष डॉ. भीमराव अंबेडकर, कर्मठता का लालित्य लाल बहादुर शास्त्री, आत्मा की आवाज पं.भवानी प्रसाद मिश्र, एकात्मकता के उन्नायक पं. दीनदयाल उपाध्याय और भारत माँ के अनमोल रत्न अटल बिहारी वाजपेयी के साथ ही स्वामी विवेकानंद के पूर्ववर्ती के रूप में भक्ति आंदोलन की देव सलिला स्वामी रामानंद के अवदान का अमरत्व भी इस कृति में समाहित है। इस रूप में यह एक सर्वसुलभ अमृतघट है। ऐसा अमृतघट, जिसे छीनने की हो? किसी में नहीं। ऐसा अमृतघट, जिसका अमृत कभी कम होने वाला नहीं। जो जितना चाहे, अपनी क्षमता अनुसार पान कर ले। जो जितना जहाँ चाहे, इसे छलका दे।

विचार विभूति के भोक्ता (उपभोक्ता नहीं) के रूप में सूरजमुखी सदृश जो कुछ लेखक ने गृहण किया उसके प्रति उसका कृतज्ञ ऋणी का भाव है। उसने स्पष्ट लिखा है,

'सूरजमुखी सूरज से प्राप्त संपोषण के प्रति चिर कृतज्ञ है।

सूरजमुखी सूर्योदय के साथ शीश उठाकर सूरज का स्वागत करता है।

वही सूरजमुखी संध्या आने पर शीश झुकाकर सूरज को विदा करता है।

सूरज और सूरजमुखी की यह पारस्परिकता कभी पुरानी नहीं पड़ती।'

यह सनातन सम्बन्ध ही मानवमात्र की अपनी उपलब्धि है। इसी के सहारे वह स्वयं को सहेजता,

---

पुस्तक : वह सूरज : मैं सूरजमुखी, लेखक : देवेन्द्र दीपक

मूल्य-500 रुपये, प्रकाशक : अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्टीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली

सँभालता आया है। विषय विशेष के अनुसार दस महापुरुषों के विचारों का अध्ययन, अवगाहन और प्रस्तुतिकरण आसान काम नहीं, पर लेखक ने लोककल्याण की भावना से अत्यंत रुचिपूर्वक यह कार्य किया है। वह विषय और विभूतियों के साथ एकात्म होता हुआ आगे बढ़ा है।

'सभी महापुरुष विभिन्न राष्ट्रीय और सामाजिक समस्याओं के विषय में समग्रता से सोचने के अभ्यासी थे। मेरा लेखक उसी दिशा का एक सजग न्यासी है।'

इतिहास की गहरी समझ के बिना इस तरह का लेखन संभव नहीं। जिन गंभीर और समकालिक महत्व के विषयों को इस पुस्तक में उठाया गया है, इतिहास बोध के बिना उनके साथ सफल निर्वाह संभव नहीं था। इसी समझ का सुफल है कि पुस्तक के प्रस्तुति क्रम का निर्धारण करने में लेखक ने अपने कालबोध को आधार बनाया है।

उन्मेष के सजग और सम्यक अन्वेषक के रूप में लेखक ने इस पुस्तक में उपेक्षित और अलक्षित पात्रों, वर्गों और विषयों को वरीयता में रखा है। सामाजिक समरसता को धुरी बनाकर उसने घूर्णन किया है। उसने अपनी अवगाहन और प्रस्तुतिकरण की यात्रा केंद्र बिंदु से परिधि, और परिधि से केन्द्र बिंदु; दोनों ओर की है। इस दौरान वह न थकता लगता है, न छकता। इस समूची यात्रा में वह अपने परिधान भी परिवर्तित नहीं करता। उसकी कमरिया पक्के रंग की है। उसका अपना रंग पक्का है। वह अपने रंग का पक्का पारखी है। थान के थान उसके सामने आ जाएँ तो भी वह अपना प्यारा सा रंग चुन कर सहेजता चलता है। पर ऐसा करते हुए वह किसी भी तरह की तृष्णा नहीं पालता।

समाज के बहुसंख्यक दीन-दुखी लोगों, उनके विषयों और उनकी बातों का समावेश पुस्तक में विस्तार से है। उनकी पीड़ाएँ, दु:खदर्द, समस्याएँ; लेखक की अपनी पीड़ाएँ हैं। वह उनसे एकरस हुआ है। दीन-दुखी-दलित-दमित का आँसू उसकी अपनी आँख का आँसू बना है। वह अपनी आँखों के आँसू पीते हुए भी सबके आँसू पोंछना चाहता है। यही उसके सूरजमुखी व्यक्तित्व का वैशिष्ट्य है।

निभाए गए दायित्वों का उल्लेख और अभिव्यक्ति पुस्तक में स्पष्ट रूप से हुई है। अपने लेखकीय व्यक्तित्व के रूप में लेखक किसी का बंधनकारी नहीं, उन्मुक्त आकाश का पंछी है। उसके विषय पुरुषों के आयाम दिग्दिगंत में हैं, सो वह कभी-कभी भले ही आसमानी ऊँचाई पाता लगे, पर उसकी दृष्टि सतत् रूप से धरती पर है। वह एक लेखक के रूप में ठेठ जमीनी विषयों में जीता है।

आलेख, शोधालेख, पत्रालेख और कविता विधाओं में समूची विषयवस्तु सँजोयी गई है। हर देशभक्त भारतवासी की भाँति लेखक का सर्वाधिक मन स्वामी विवेकानंद में रमा है। उन्हीं के यहाँ से पुस्तक का शीर्षक निकलकर आया है। वे लेखक को हिंदू जीवन पद्धति के 'इनसाइडर' आलोचक के रूप में प्रिय हैं। पथभ्रांति की स्थिति में लेखक सदा उनसे राह पाता रहा है। वह लिखता है, 'भुक्ति, मुक्ति, भक्ति आदि के जितने भी संभावित क्षेत्र हैं, स्वामी मेरे मार्गदर्शक हैं। स्वामी से मैंने सीखा, सोचो; लेकिन सोचते ही मत रहो, कुछ करो भी। निंदा नहीं निदान, आलोचना नहीं अनुष्ठान, आक्षेप नहीं प्रक्षेप। सकारात्मक सोच, तेजस्वी पुरुषार्थ और मुक्त मन। न अंध समर्थन, न अंध विरोध। अशक्त को शक्ति दो, सेवा दो।'

यह कथन इस पुस्तक में मूलमंत्र की तरह व्यवहृत हुआ है। लेखक अपने सूरजधर्मी व्यक्तित्वों की

भाँति समय की दौड़ में पीछे रह गई जातियों को पुनः 'सामाजिक व्यक्तित्व' प्रदान करने का हिमायती है। उसकी यह हिमायत स्पष्टतः आज भी भारत राष्ट्र की सबसे बड़ी आवश्यकता की पक्षधरता है।

भारत राष्ट्र तब तक गौरव को प्राप्त नहीं हो सकता जब तक कि उसका बहुजन अपने पूर्ण आत्मसम्मान के साथ अपने सृजन में रत न हो। देश और जन के सभी प्रकार की संकीर्णताओं से बाहर निकलकर स्वयं के विशालहृदयी निवेश से ही यह संभव है।

अस्पृश्यता के विरुद्ध लेखक की आंतरिक पीड़ा की अभिव्यक्ति पुस्तक में आद्यांत है। उसे 'अस्पृश्यता धर्म के क्षेत्र से आया वायरस' लगती है। वह हर स्तर पर अस्पृश्यता का विरोधी है; चाहे वह भौतिक क्षेत्र हो, सामाजिक क्षेत्र हो, सांस्कृतिक क्षेत्र हो, धार्मिक क्षेत्र हो या बौद्धिक क्षेत्र। वह पूरी बौद्धिक ईमानदारी से सबको उद्धृत करता चलता है। स्वाधीनता संग्राम की प्रमुख प्रवृत्तियों और स्वातंत्र्योत्तर भारत के परिदृश्य का भी पुस्तक में व्यापक उल्लेख हुआ है।

अछूतोद्धारक अग्निचेता राष्ट्र भक्त के रूप में लाला लाजपतराय को याद किया गया है। सरदार पटेल के अवदान का उल्लेख 'देश देने वाले' एकीकरण के पुरोधा के रूप में है, 'अंग्रेजों ने जाते समय / हमें स्वेच्छाचारी रियासतें दी थीं, / सरदार पटेल ने / हमें देश दिया।' सावरकर जी की चर्चा 'राष्ट्र के कल्पक' के रूप में है।

स्वामी विवेकानंद के बाद सर्वाधिक पृष्ठ डॉ. अम्बेडकर के अवदान को समर्पित हैं। लेखक ने उनके जीवन और कार्यों का विहंगावलोकन करने का प्रयास किया है। वह पाता है कि वे मुक्ति-यज्ञ में संघर्ष की आहुति डालने वाले महान् होता के रूप में 'हिंदू धर्म के नहीं, हिंदू धर्म में व्याप्त पाखण्ड और जातीय दंभ के विरोधी थे।'

शास्त्री जी की चर्चा 'जय जवान, जय किसान' मंत्र के प्रदाता के रूप में है। 'शास्त्री जी के प्रति' अपनी कविता में वह लिखता है-

'तुमने राजदंड यों लिया हाथ में
कि देश की देह को
उसकी खोई रीढ़ मिल गई।'

'बृहस्पति के विजय की संकल्प-मूर्ति' भवानीप्रसाद मिश्र की आपातकाल में एक जागृति चेता कवि के रूप में निभाई गई भूमिका की विस्तृत चर्चा है।

अप्रतिम साधक, शून्य से शिखर की ओर के यात्री, राजनीति के शुद्धीकरण और संस्कृतिकरण के पुरोधा, एकात्म मानववाद के चिंतक, कर्मठता, साहस, समर्पण और मनीषा की प्रतिमूर्ति के रूप में पं. दीनदयाल उपाध्याय का अवदान समाहित हुआ है।

सबसे अंत में अटल जी की कविताओं में उन्मेष की चर्चा है। अटल आह्वान है-

'आहुति बाकी, यज्ञ अधूरा
अपनों के विघ्नों ने घेरा
अंतिम युद्ध का वज्र बनाने
नव दधीचि हड्डियाँ गलाएँ

आओ, फिर से दीप जलाएँ।'

इस संक्षिप्त पर सारगर्भित लेख में उनकी पत्रकारिता और राजनीति के बारे में भी बताया गया है।

मातृभाषा, हिंदी भाषा और साहित्य के बारे दो लेख – 'स्वामी विवेकानंद : हिंदी भाषा और साहित्य' तथा 'पं. दीनदयाल उपाध्याय की भाषादृष्टि' हैं। इन लेखों में प्रसंगानुसार अनेक महापुरुषों के मतों का समावेश हुआ है। 'स्वामी विवेकानंद और मानवाधिकार' लेख में मानवाधिकारों की चर्चा है। डॉ. अम्बेडकर के कार्यों और दृष्टि के संदर्भ में भारतीय नारियों की चर्चा आई है।

विरोधी विमर्शों का समावेश इस पुस्तक की विशिष्टता को और बढ़ा देता है। सूक्तिमत्ता, लोकोक्तियों और मुहावरों का स्वाभाविक समावेश, तत्सम शब्दावली में सहज बोधगम्य प्रस्तुति के साथ यह पुस्तक पाठक के हाथों बहुत कुछ सौंपती चलती है। आवरण पृष्ठ आकर्षक, प्रभावी और संदेशप्रद है। अशुद्धियाँ न्यूनतम और उपेक्षणीय हैं। कागज, मुद्रण और जिल्दबंदी श्रेष्ठ है।

अपनी समग्रता में समीक्ष्य पुस्तक एक सम्यक उऋण धन है। एक ऐसा खजाना जो बिना किसी भेदभाव सबके लिए है। जो जितना चाहे, इसे ले सकता है, सहेज सकता है। जो जितना चाहे, इसका अवगाहन कर सकता है। जो जितना चाहे, इसे जीवन सँवारने में लगा सकता है। जो जितना चाहे, इससे दूसरों का जीवन सँवार सकता है। इस पुस्तक में प्रस्तुत मूल्यों के सान्निध्य में, पंचतत्वों की काया को साधकर, एकात्मता को आत्मसात करते हुए व्यक्ति अपनी संभावनाओं के पट स्वयं अनावृत कर सकता है।

सम्पर्क : *भोपाल (म.प्र.)*
मो. 8827301068, 6265825459